Registration No. V-36244/2008-09 **ISSN :- 2348-0076**

JIFE Impact Factor – 7.21

Samajiki Sandarsh

A Multidisciplinary Quarterly International Peer Reviewed Referred Research Journal

Editor
Dr. Kamlesh Kumar Singh
Assistant Professor
Department of Sociology
Pt. D.D.U. Govt. Girls P.G. College
Sevapuri, Varanasi

Volume - XIV **No. - 1** **(Jan. – Mar. 2026)**

(Part – II)

Published by
Future Fact Society
Varanasi (U.P.) India

Samajiki Sandarsh - *A Refereed Journal, Published by : Quarterly*

Correspondence Address :
C 4/270, Chetganj
Varanasi, U.P.-221001
Mobile No. :- 09336924396
Email- samajikisandarsh@gmail.com

Note :-

The views expressed in the journal "Samajiki Sandarsh" are not necessarily the views of editorial board or publisher. Neither any member of the editorial board nor publisher can in anyway be held responsible for the views and authenticity of the articles, reports or research findings. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Managing Editor
Avinash Kumar Gupta

©Publisher

ISSN : 2348-0076

Printed by
Interface Computer, B 31/13-6, Malviya Kunj, Lanka, Varanasi-221005 (U.P.)

ADVISORY BOARD

- **Prof. T. N. Singh,** United Nations Professor of Plant Physiology, Department of Plant Sciences, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Prof. Sarswati Singh**, Department of Sanskrit, Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Diwakar Pradhan,** Professor in Nepali, Head, Deptt. of Indian Languages Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Prof. S.K. Bhatnagar,** School for Legal Studies, BBAU, Lucknow
- **Prof. Suresh Prasad Rai,** Former-Head, Department of English, S.Sinha College Aurangabad, Bihar
- **Left. Dr. Munna Singh,** Head, Physical Education Department, Handia P.G. College, Handia, Allahabad, U.P.
- **Dr. Bindeshwar Prasad Mandal,** Head, Department of Sociology, B.N. College, Patna University, Patna (Bihar)
- **Dr. Achchelal Yadav,** Head, Physical Education Department, PDU Rajkiya P.G.College, Saidpur, Ghazipur, U.P.

EDITORIAL BOARD

- **Dr. Sanjay Singh,** Department of Plant Science, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Dr. Diwakar Pradhan,** Professor in Nepali, Head, Deptt. of Indian Languages Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Nagendra Kumar Singh,** Professor, Department of Journalism & Mass Communication, Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Manish Arora,** Associate Professor, Faculty of Visual Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Somu Singh,** Assistant Professor, Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Surjoday Bhattacharya,** Assistant Professor, Government Degree College, Pratapgarh U P
- **Dr. Upasana Ray,** Associate Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Krishna Kant Tripathi,** Assistant Professor, Deptt. of Education, Central University of Mijoram, Mijoram
- **Dr. Urjaswita Singh,** Assistant Professor, Department of Economics, M.G. Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Santosh Kumar Singh,** Assistant Professor, P.G. Department of Psychology, J.P. University. Chapra
- **Dr. Ramkirti Singh,** Assistant Professor, Department of Psychology, Gorakhpur University, Gorakhpur

- **Dr. Girish Kumar Tiwari,** Assistant Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Ranjeet Kumar Ranjan,** Assistant Professor, Department of Psychology, J.P. College, Narayanpur, Bihar
- **Dr. Paromita Chaubey,** Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi

EDITOR'S NOTE

It is a great honour to me to extend my warm greetings and welcome you all to the journal, **Samajiki Sandarsh,** a refereed journal of multi disciplinary research. The journal, which is a peer-reviewed, will devote to the promotion of multi-disciplinary research and explorations to the South Asian and global community. It is our objective to provide a platform for the publication of new scholarly articles in the rapidly growing field of various disciplines. We are trying to encourage new research scholars and post graduate students by publishing their papers so that they may learn and participate in literary publishing through a professional internship. Scholarly and unpublished research articles, essays and interviews are invited from scholars, faculty researchers, writers, professors from all over the world.

Note: All outlook and perspectives articulated and revealed in our peer refereed journal are individual responsibility of the author concerned. Neither the editors nor publisher can be held responsible for them anyhow. Plagiarism will not be allowed at any level. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Hoping all of you shall enjoy our endeavors and those of our contributors.

Editor

CONTENTS

"Samajiki Sandarsh"

➲	बिहार पंचायती राज (2006 के पश्चात) में मुखिया पति एवं सरपंच पति की अवधारणा, सत्ता संरचना व वास्तविक नेतृत्व : एक अध्ययन ***दीपक कुमार***	01-06
➲	दलित साहित्य और मणिकर्णिका ***निभा कुमारी***	07-09
➲	वृद्ध महिलाओं में अवसाद एवं अकेलेपन का अध्ययन ***अनिता कुमारी***	10-13
➲	नए राज्यों की मांग : भारतीय संघवाद, क्षेत्रीय आकांक्षाएँ एवं प्रशासनिक चुनौतियाँ ***अनिल कुमार सिंह***	14-19
➲	जलवायु परिवर्तन और पेयजल संकट गोरखपुर के विशेष संदर्भ में ***डॉ. अमृता कुमारी***	20-22
➲	चंपारण में नील आन्दोलन का ऐतिहासिक अवलोकन ***अजीत कुमार***	23-24
➲	106वां संविधान संशोधन अधिनियमः लैंगिक समानता की दिशा में एक ऐतिहासिक पहल ***लक्ष्मी नारायण***	25-31
➲	गरीबी उन्मूलन में जीविका परियोजना की भूमिका : एक अध्ययन बिहार के सन्दर्भ में ***डॉ. संगीता कुमारी***	32-35
➲	उत्कले साहित्यपरम्परा ***राजलक्ष्मी वेहेरा***	36-40
➲	सातवाहन युगीन अभिलेखों में निरूपित भूमि अनुदान परम्पराः समीक्षात्मक अध्ययन ***सत्यम यादव***	41-45
➲	राजा भोज और नाव निर्माण पद्धति ***लालबाबू यादव***	46-50
➲	पूर्वोत्तर भारत में हिंदी की स्थिति : एक अध्ययन ***रंजेश गुप्ता***	51-55

➲	दलित साहित्य और मुर्दहिया ***बैजू कुमार राम*** ***डॉ. रामदुलार साहनी***	56-62
➲	हिन्दी संस्मरण साहित्य का उद्भव एवं विकास ***अमित कुमार***	63-67
➲	स्वास्थ्य सुरक्षा में खान–पान, साफ–सफाई का महत्व – एक अध्ययन ***डॉ. सुमन कुमारी***	68-70
➲	नेपाली की काव्य चेतना ***मुकेश कुमार***	71-74
➲	मोहन राकेश के नाटकों में समकालीन बोध ***डॉ. आनंद कुमार गोंड***	75-80
➲	समाजार्थिक विकास एवं पर्यटन में ICT की भूमिका : अयोध्या जनपद के विशेष सन्दर्भ में ***डॉ. किशन सोनी***	81-84
➲	मृण्मूर्तिकला – विविध काल में प्रासंगिक ***सुनीत कुमार द्विवेदी***	85-87

बिहार पंचायती राज (2006 के पश्चात) में मुखिया पति एवं सरपंच पति की अवधारणा, सत्ता संरचना व वास्तविक नेतृत्व : एक अध्ययन

दीपक कुमार*

सारांश

वर्ष 2006 में बिहार पंचायती राज अधिनियम के द्वारा 50 प्रतिशत महिला आरक्षण लागू करने के साथ ही बिहार, देश का पहला राज्य बना जिसने स्थानीय शासन में लैंगिक समानता की दिशा में एक ऐतिहासिक कदम उठाया। जिससे निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई ।हालांकि, इस संख्यात्मक सफलता के समानांतर एक ऐसी अनौपचारिक सत्ता संरचना का उदय हुआ जहाँ निर्वाचित महिलाओं के पति(मुखिया पति, सरपंच पति आदि)या पुरुष संबंधी वास्तविक शक्ति का प्रयोग करते हैं। बिहार के विभिन्न जिलों से प्राप्त आंकड़ों, सरकारी प्रतिवेदनों और व्यवहारिक अनुभव के माध्यम से इस छद्म नेतृत्व की प्रकृति, इसके सामाजिक-सांस्कृतिक कारणों और वास्तविक नेतृत्व की संभावनाओं का परीक्षण करना प्रासंगिक प्रतीत होता है। विश्लेषण यह दर्शाता है कि पितृसत्तात्मक मानदंडों, साक्षरता की कमी और प्रशासनिक अनुभव के अभाव ने इस 'छाया नेतृत्व' को जन्म दिया है, जिसने संवैधानिक जनादेश के मूल उद्देश्य को चुनौती दी है । इस चुनौती के समाधान के संदर्भ मे राज्य सरकार ने कुछ विनियामक कदम भी उठाए है। विश्लेषकों के अनुसार वास्तविक सशक्तिकरण के लिए केवल पदों का आरक्षण पर्याप्त नहीं है, बल्कि इसके लिए व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन और संस्थागत समर्थन तंत्र की आवश्यकता है।

प्रमुख शब्दावली: पंचायती राज व्यवस्था, मुखिया पति, सरपंच पति, महिला आरक्षण, वास्तविक नेतृत्व, प्रतिनिधिक नेतृत्व,सत्ता संरचना, राजनीतिक सशक्तिकरण,पितृसत्तात्मक व्यवस्था, प्रॉक्सी राजनीति,स्थानीय स्वशासन, ग्राम सभा, विकेन्द्रीकरण, निर्णय प्रक्रिया, सामाजिक न्याय,लैंगिक समानता, राजनीतिक भागीदारी, ग्रामीण नेतृत्व, संवैधानिक संशोधन, लोकतांत्रिक उत्तरदावित्व

भूमिका:

भारतीय लोकतंत्र में सत्ता के विकेंद्रीकरण की यात्रा अत्यंत प्राचीन काल से चली आ रही है, परंतु आधुनिक संदर्भ में इसे 73वें संविधान संशोधन अधिनियम (1992) द्वारा एक सुदृढ़ आधार प्राप्त हुआ। इस संशोधन ने पंचायतों को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया और स्थानीय स्वशासन को भारतीय संघात्मक शासन के "तीसरे स्तंभ" के रूप में स्थापित किया। इस संशोधन का सबसे क्रांतिकारी पहलू महिलाओं के लिए अनिवार्य रूप से एक-तिहाई (33.33%) सीटों का आरक्षण करना था, जिसका उद्देश्य ग्रामीण राजनीति में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करना था।

बिहार में पंचायती राज का इतिहास उतार-चढ़ाव भरा रहा है। वर्ष 1978 के चुनावों के पश्चात, राज्य में लगभग दो दशकों से अधिक समय के बाद 2001 में पंचायत चुनाव सम्पन्न हुआ। महिलाओं हेतु संवैधानिक प्रावधान के बावजूद इनकी पर्याप्त भागीदारी नहीं देखी गई।इसी लैंगिक असंतुलन को दूर करने के लिए बिहार सरकार ने 'बिहार पंचायती राज अधिनियम 2006' अधिनियमित किया गया तथा महिलाओं की 50 प्रतिशत प्रतिनिधित्व हेतु उपबंध किया गया ।इस ऐतिहासिक निर्णय ने न केवल बिहार बल्कि पूरे देश में महिला सशक्तिकरण की एक नई बहस छेड़ दी।

* UGC नेट (राजनीतिक विज्ञान), पी.एच.डी शोधार्थी, बी.आर.ए.बी.यू., मुजफ्फरपुर (बिहार)

बिहार में 2006 के चुनावों के परिणामों ने यह स्पष्ट कर दिया कि आरक्षण ने महिलाओं के लिए सार्वजनिक जीवन में प्रवेश के द्वार खोल दिए हैं। आरक्षित श्रेणियों (एस.सी,एस.टी,ई. बी.सी) के भीतर भी 50 प्रतिशत क्षैतिज (Horizontal) आरक्षण प्रदान किया गया, जिससे यह सुनिश्चित हुआ कि समाज के सबसे निचले पायदान की महिलाएं भी नेतृत्व के पदों तक पहुँच सकें।हालांकि, यह प्रतिनिधित्व 'संख्यात्मक' रूप में तो सफल रहा, लेकिन 'गुणात्मक' रूप में सत्ता संरचना का स्वरूप कुछ और ही उभर कर सामने आया।

मुखिया पति और सरपंच पति: अवधारणा की व्युत्पत्ति और स्वरूप

'मुखिया पति' और 'सरपंच पति' शब्द स्थानीय बोलचाल से उत्पन्न हुए हैं और वर्तमान में प्रशासनिक और अकादमिक शब्दावली का हिस्सा बन चुके हैं। यह उन पतियों या पुरुष रिश्तेदारों को संदर्भित करते हैं जो अपनी निर्वाचित पत्नियों, बहनों या पुत्रवधुओं की जगह प्रशासनिक और राजनीतिक कार्यों का संचालन करते है। हालांकि यह अवधारणा अब केवल बिहार तक सीमित नहीं है।

सत्ता संरचना का छद्म स्वरूप

एक सामान्य 'मुखिया पति' की कार्यशैली में वह महिला प्रतिनिधि की ओर से बैठकों में भाग लेता है, प्रखंड कार्यालय में अधिकारियों के साथ बातचीत करता है, और विकास योजनाओं के लिए ठेकेदारों के साथ समन्वय बिठाता है। निर्वाचित महिला का कार्य अक्सर केवल आधिकारिक दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करने या अंगूठा लगाने तक सीमित हो जाता है ।यह व्यवस्था 'छाया नेतृत्व' के एक ऐसे मॉडल का निर्माण करती है जहाँ सत्ता का संवैधानिक स्रोत महिला है, लेकिन उसका वास्तविक उपयोग पुरुष द्वारा किया जाता है। ग्रामीण समुदायों में भी इन पुरुषों को 'मुखिया जी' के रूप में ही मान्यता दी जाती है, जो यह दर्शाता है कि सामाजिक स्वीकृति ने इस असंवैधानिक हस्तक्षेप को एक प्रकार की अनौपचारिक वैधता प्रदान कर दी है ।

छद्म नेतृत्व के विभिन्न आयाम:

निर्वाचित पद	**वास्तविक नेतृत्व**	**संवैधानिक पदधारक**	**शक्ति का माध्यम**
मुखिया	मुखिया पति	निर्वाचित महिला	निधि आवंटन, योजना चयन, प्रशासनिक बैठकें
सरपंच	सरपंच पति	निर्वाचित महिला	विवाद समाधान, ग्राम कचहरी की सुनवाई, जुर्माना लगाना
प्रमुख	प्रमुख पति	निर्वाचित महिला	प्रखंड स्तर की समितियों का समन्वय
जिला परिषद अध्यक्ष	अध्यक्ष पति	निर्वाचित महिला	जिला स्तर की योजनाएं और संसाधन वितरण

सामाजिक-सांस्कृतिक और संरचनात्मक कारणों का विश्लेषण:-

पितृसत्तात्मक मानसिकता

बिहार का ग्रामीण समाज ऐतिहासिक रूप से पितृसत्तात्मक रहा है, जहाँ 'सार्वजनिक क्षेत्र' को पुरुषों का और 'निजी क्षेत्र' को महिलाओं का कार्यक्षेत्र माना जाता रहा है। महिलाओं को नीति निर्माता या निर्णय लेने हेतु सक्षम नहीं माना जाता है। पितृसत्तात्मक परिवेश में महिलाओं को किसी के छत्रछाया में रखने की परंपरा रही है। परिवार और समाज भी अक्सर एक स्वतंत्र महिला नेता के बजाय उसके पति के माध्यम से कार्य करना अधिक सुविधाजनक समझते हैं।

शैक्षणिक अंतराल और सूचना की कमी

साक्षरता दर में सुधार के बावजूद, बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की शिक्षा और विशेष रूप से राजनीतिक और प्रशासनिक ज्ञान की कमी एक बड़ी बाधा बनी हुई है।निर्वाचित महिलाओं को पंचायती राज

अधिनियम की धाराओं, बजटीय प्रक्रियाओं और सरकारी पोर्टल के उपयोग का पर्याप्त ज्ञान नहीं होता। अध्ययन बताते हैं कि उच्च शिक्षा प्राप्त महिला प्रतिनिधियों में 'मुखिया पति' का प्रभाव काफी कम देखा गया है।

दोहरी भूमिका का संघर्ष

ग्रामीण परिवेश में निर्वाचित महिला प्रतिनिधि पर घर के कामकाज तथा बच्चों की परवरिश का भी दायित्व होता है । सक्रिय राजनीति प्रतिनिधि की जिम्मेदारी निर्वहन हेतु पर्याप्त समय नहीं मिल पाता।

आर्थिक निर्भरता

चुनाव लड़ने के लिए आवश्यक वित्तीय संसाधन अक्सर परिवार के पुरुष सदस्यों द्वारा प्रदान किए जाते हैं। चूंकि महिला प्रतिनिधियों के पास अपनी निजी संपत्ति या स्वतंत्र आय के स्रोत कम होते हैं, आर्थिक निर्भरता स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता को क्षीण कर देती है।

संस्थागत पक्षपात और नौकरशाही का रवैया

अक्सर यह देखा गया है कि प्रखंड और जिला स्तर के अधिकारी महिला प्रतिनिधियों के स्थान पर उनके पतियों से संवाद करना पसंद करते हैं। नौकरशाही का यह रवैया छद्म नेतृत्व को बढ़ावा देता है क्योंकि अधिकारियों को लगता है कि पुरुषों के साथ सौदेबाजी करना या योजनाओं को लागू करवाना 'आसान' है। यह संस्थागत पितृसत्तात्मक मानसिकता महिला प्रतिनिधियों के आत्मविश्वास को और कमजोर करता है।

विकास की प्राथमिकताओं में परिवर्तन

अध्ययनों के अनुसार, महिला-नेतृत्व वाली पंचायतें स्वास्थ्य, प्राथमिक शिक्षा, पेयजल और पोषण जैसे सामाजिक संकेतकों पर अधिक ध्यान केंद्रित करती हैं। इसके विपरीत, जहाँ 'मुखिया पति' का वर्चस्व होता है, वहाँ विकास की दिशा अक्सर 'हार्ड इन्फ्रास्ट्रक्चर' जैसे सड़क निर्माण और नाली निर्माण की ओर मुड़ जाती है। संवेदनशील पहलू पर महिलाओ का फोकस ज्यादा होता है।

विकास संकेतक	**स्वतंत्र महिला नेतृत्व**	**मुखिया पति संचालित नेतृत्व**
प्राथमिक स्वास्थ्य (टीकाकरण, प्रसव)	उच्च प्राथमिकता,नियमित निगरानी	कम प्राथमिकता, विभागीय काम पर निर्भर
पेयजल और स्वच्छता	सामुदायिक भागीदारी के साथ बेहतर प्रबंधन	ठेका-आधारित कार्य, कम टिकाऊपन
महिला सभाओं का आयोजन	नियमित और सक्रिय	नाममात्र या पतियों द्वारा संचालित

बिहार में NFHS (राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण) के आंकड़ों के विश्लेषण से पता चला है कि महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण वाले क्षेत्रों में बच्चों के स्वास्थ्य परिणामों और महिलाओं के सशक्तिकरण सूचकांकों में सकारात्मक सुधार हुआ है । यह इस बात का प्रमाण है कि भले ही छद्म नेतृत्व मौजूद हो, लेकिन महिलाओं की उपस्थिति मात्र से ही नीतिगत प्राथमिकताओं में बदलाव आना शुरू हो जाता है।

सामाजिक न्याय और ग्राम कचहरी का नेतृत्व

सरपंच के रूप में महिलाओं ने विवादों के निपटारे में अधिक सहानुभूतिपूर्ण और सौहार्दपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया है। स्वतंत्र महिला सरपंचों ने बाल विवाह, घरेलू हिंसा और दहेज जैसे मुद्दों पर कड़ा रुख अपनाया है।

प्रशासनिक और कानूनी हस्तक्षेप व राज्य सरकार की कार्रवाई:-

बिहार सरकार ने 'मुखिया पति' और 'सरपंच पति' की समस्या को गंभीरता से लिया है और इसे रोकने के लिए कई विनियामक कदम उठाए हैं। विशेष रूप से 2021-22 के चुनावों के पश्चात सरकार ने अधिक कड़ाई दिखाई है।।बिहार पंचायती राज विभाग ने स्पष्ट आदेश जारी किया है कि निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों के

स्थान पर उनके पतियों या किसी भी निजी प्रतिनिधि को आधिकारिक बैठकों, ग्राम सभा या प्रशासनिक वार्ताओं में भाग लेने की अनुमति नहीं दी जाएगी।पंचायती राज मंत्री द्वारा जारी निर्देशों के अनुसार, यदि कोई महिला प्रतिनिधि बैठक में नहीं आती है और उसका पति पाया जाता है, तो उस बैठक को अवैध माना जाएगा और संबंधित अधिकारियों पर भी अनुशासनात्मक कार्रवाई की जाएगी।अधिनियम की धारा 18(5) के तहत राज्य सरकार को यह शक्ति प्राप्त है कि वह किसी भी मुखिया या सरपंच को पद का दुरुपयोग करने या कर्तव्यों की अनदेखी करने पर हटा सकती है। पतियों को प्रशासनिक कार्यों में हस्तक्षेप करने की अनुमति देना 'शक्ति का दुरुपयोग' माना गया है। पटना उच्च न्यायालय ने भी कई मामलों में यह पुष्टि की है कि निर्वाचित प्रतिनिधि ही कार्य के लिए जिम्मेदार है और वह अपनी शक्तियों को किसी और को हस्तांतरित नहीं कर सकता ।

पंचायती राज मंत्रालय के सलाहकार समिति की रिपोर्ट (2025)

भारत सरकार के पंचायती राज मंत्रालय ने सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों के आलोक में 2023 में एक उच्च स्तरीय सलाहकार समिति का गठन किया था।जिसने 2025 में अपनी विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत की है। यह रिपोर्ट विशेष रूप से 'मुखिया पति' संस्कृति को समाप्त करने पर केंद्रित है और इसके सुझाव बिहार के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

समिति ने सुझाव दिया है कि छद्म नेतृत्व के सिद्ध मामलों में पुरुष संबंधियों और महिला प्रतिनिधियों दोनों पर "अनुकरणीय दंड" लगाए जाने चाहिए। यदि कोई पति लगातार हस्तक्षेप करता है, तो महिला प्रतिनिधि को अयोग्य घोषित करने का कानूनी प्रावधान होना चाहिए।पंचायतों की सभी बैठकों की अनिवार्य वीडियो रिकॉर्डिंग की जानी चाहिए ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि निर्वाचित महिला ही किसी विषय का नेतृत्व कर रही है।महिला मुखियाओं को कार्य के लिए परिवहन की सुविधा (जैसे स्कूटी) और मोबाइल भत्ता प्रदान किया जाना चाहिए ताकि वे अपने परिवार पर निर्भर न रहें ।

प्रत्येक पंचायत क्षेत्र में एक महिला लोकपाल की नियुक्ति की जानी चाहिए जो विशेष रूप से निर्वाचित महिलाओं को डराने-धमकाने या उनके कार्यों में बाधा डालने के मामलों की सुनवाई करे।

'सशक्त पंचायत नेत्री अभियान' के तहत नेतृत्व कौशल, संचार और तकनीकी ज्ञान के लिए विशेष प्रशिक्षण मॉड्यूल विकसित किए जाने चाहिए।

सफल नेतृत्व के उदाहरण: छद्म नेतृत्व को चुनौती देती महिलाएं

बिहार में 'मुखिया पति' के विमर्श के बीच ऐसी हजारों महिलाएं हैं जिन्होंने इस बाधा को पार कर मिसाल कायम की है। समस्तीपुर जिले की मुखिया प्रेमा देवी ने अपने पंचायत में बायोगैस संयंत्रों और जल संरक्षण के माध्यम से पर्यावरण के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया है। रोहतास डेवढ़ी ग्राम पंचायत की मुखिया प्रियंका सिंह को महिला-केंद्रित पहल और महिला सशक्तीकरण के उत्कृष्ट कार्यों के लिए राष्ट्रीय स्तर पर सम्मानित किया गया है।शिवहर के पुरनहिया प्रखंड की दोस्तीयां पंचायत की मुखिया सुनैना देवी को 'मॉडल महिला हितैषी ग्राम पंचायत' का राज्य स्तरीय पुरस्कार मिला।इसी प्रकार, मुजफ्फरपुर और रोहतास की कई महिला मुखियाओं ने शराबबंदी को सख्ती से लागू करने और सरकारी स्कूलों की निगरानी में पुरुषों से अधिक तत्परता दिखाई है।

ये सफल महिलाएं यह दर्शाती हैं कि जब एक महिला को पर्याप्त सामाजिक समर्थन और शिक्षा मिलती है, तो वह न केवल अपने पति की छाया से बाहर निकलती है, बल्कि पूरे समाज के लिए प्रेरणा बन जाती है। उनकी नेतृत्व शैली अक्सर 'सहभागितापूर्ण' होती है, जो महात्मा गांधी के 'ग्राम स्वराज' के सपने के अधिक करीब है।

संरचनात्मक चुनौतियां:

भविष्य में बिहार की पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं के वास्तविक नेतृत्व स्थापित करने के मार्ग में कुछ चुनौतियां निम्न है

आरक्षण का रोटेशन: आरक्षित सीटों के बदलने से महिला प्रतिनिधियों को अपना प्रभाव क्षेत्र विकसित करने का समय नहीं मिलता। क्षेत्र अनारक्षित होने के बाद सामान्यतः महिलाएं चुनाव नहीं लड़ती, संबंधित प्रतिनिधि के अनुभव का लाभ समाज को नहीं मिल पाता।

हिंसा और सुरक्षा: ग्रामीण राजनीति में अपराधीकरण और हिंसा का खतरा महिलाओं को स्वतंत्र रूप से कार्य करने से डराता है। पतियों का हस्तक्षेप अक्सर 'सुरक्षा' के नाम पर शुरू होता है और धीरे-धीरे 'नियंत्रण' में बदल जाता है।

प्रशासनिक उदासीनता: स्थानीय नौकरशाही को अभी भी यह स्वीकार करने में कठिनाई होती है कि एक कम पढ़ी-लिखी ग्रामीण महिला उनसे सवाल पूछ सकती है। जब तक अधिकारियों की मानसिकता में बदलाव नहीं आएगा, मुखिया पति सरपंच पति एक 'सुविधाजनक माध्यम' बने रहेंगे।

सशक्तिकरण हेतु कुछ सुझाव

कानूनी सुदृढ़ीकरण: पतियों के हस्तक्षेप को दंडात्मक अपराध बनाना।

क्षमता निर्माण: निरंतर और व्यावहारिक प्रशिक्षण, न कि केवल कागजी औपचारिकता।

समान दृष्टिकोण: पितृसत्तात्मक सोच से बाहर निकल कर, महिलाओं को भी हर प्रकार के क्षमता से युक्त मानना।

निष्कर्ष:-

बिहार में 2006 के पश्चात 'मुखिया पति' और 'सरपंच पति' की अवधारणा एक गहरे सामाजिक विरोधाभास का परिणाम है। एक ओर प्रगतिशील कानून ने महिलाओं को सत्ता के शिखर पर पहुँचाया, तो दूसरी ओर पारंपरिक पितृसत्तात्मक ढांचे ने उस सत्ता को परोक्ष रूप से नियंत्रित करने का प्रयास किया। अध्ययन स्पष्ट करता है कि सत्ता संरचना में यह विसंगति केवल प्रशासनिक विफलता नहीं है, बल्कि एक सामाजिक संक्रमण का दौर है। आंकड़े और जमीनी अध्ययन यह संकेत देते हैं कि 'मुखिया पति' का प्रभाव धीरे-धीरे कम हो रहा है। स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से महिलाओं की आर्थिक और सामाजिक लामबंदी, सरकार के कड़े प्रतिबंधात्मक आदेश और नई पीढ़ी की महिला प्रतिनिधियों की उच्च शिक्षा इस परिवर्तन के प्रमुख वाहक हैं। यद्यपि 60 प्रतिशत तक प्रॉक्सी नेतृत्व की उपस्थिति चिंताजनक है, लेकिन शेष 40 प्रतिशत महिलाएं जो स्वतंत्र रूप से नेतृत्व कर रही हैं, वे ग्रामीण बिहार के भविष्य का वास्तविक चेहरा हैं। वास्तविक नेतृत्व तभी संभव होगा जब हम महिलाओं को केवल 'प्रतिनिधि' के रूप में नहीं, बल्कि 'निर्णयकर्ता' के रूप में स्वीकार करेंगे। 50 प्रतिशत आरक्षण ने महिलाओं के लिए सार्वजनिक मंच तो तैयार कर दिया है, लेकिन उस मंच पर अपनी आवाज उठाने के लिए उन्हें निरंतर प्रशिक्षण, सुरक्षा और सम्मान की आवश्यकता है। बिहार की पंचायती राज व्यवस्था आज एक ऐसे मोड़ पर है जहाँ वह 'प्रतीकात्मक लोकतंत्र' से 'सार्थक लोकतंत्र' की ओर बढ़ रही है। मुखिया पति और सरपंच पति की छाया का अंत से ही बिहार में वास्तविक ग्राम स्वराज की स्थापना होगी।

संदर्भ सूची:-

- बिहार पंचायती राज अधिनियम, 2006
- भारतीय राजव्यवस्था(7th edition),एम. लक्ष्मीकांत, पृ. 38.1 - 38.2
- Grassroots Democracy and Panchayati Raj, घनश्याम शाह पृ.80-112 → ग्रामीण सत्ता संरचना पृ. 140-167 → जाति, पितृसत्ता और पंचायत नेतृत्व

- “सरपंच पति-मुखिया पति प्रवृत्ति पर रोक” – Hindustan, पूर्णिया संस्करण, 20 सितंबर 2025 महिला पंचायत प्रतिनिधियों के प्रशिक्षण और स्वतंत्र निर्णयकारी भूमिका पर केंद्रित रिपोर्ट।
- “बिहार पंचायत चुनाव में मारामारी, शादी और जाति बनी पैंतरा” – Hindustan, 29 अक्टूबर 2021,पंचायत चुनावों में जाति, विवाह और आरक्षण राजनीति के माध्यम से सत्ता नियंत्रण की प्रवृत्तियों का विश्लेषण।
- “Women in Panchayats: Between Empowerment and Proxy Politics” – The Hindu,15 जुलाई 2018,महिला पंचायत प्रतिनिधियों के नाम पर पुरुषों द्वारा वास्तविक सत्ता संचालन की प्रवृत्ति पर संपादकीय टिप्पणी।
- ”Panchayat Reservation and Patriarchal Control in Bihar” – The Indian Express, 08 अगस्त 2019,पंचायतों में महिला आरक्षण के बावजूद पितृसत्तात्मक सत्ता संरचना के बने रहने का विश्लेषण।
- “Proxy Politics in Rural India” – The Telegraph,12 जनवरी 2020,ग्रामीण भारत, विशेषकर बिहार में “प्रॉक्सी महिला नेतृत्व” और पंचायत सत्ता के सामाजिक आयाम
- “महिला मुखिया या मुखिया पति?” – Prabhat Khabar,18 नवंबर 2021

दलित साहित्य और मणिकर्णिका

निभा कुमारी*

शोध-सार:

साहित्य आधुनिक दौर में दलित विमर्श का एक व्यापक सामाजिक और वैचारिक आंदोलन के रूप में उभरकर सामने आया है। सदियों तक उपेक्षित, शोषित और दमन का जीवन जीने वाली मानव अब अपने अस्तित्व और अधिकारों के प्रति जागरूक हो चुकी है। भारतीय समाज की पारंपरिक संरचना, जो वर्ण-व्यवस्था, जातिगत भेदभाव और ऊँच-नीच की मानसिकता पर आधारित रही, उसने समाज के एक बड़े वर्ग को मानवीय अधिकारों से वंचित रखा और उन्हें अमानवीय परिस्थितियों में जीवन बिताने के लिए मजबूर किया।

बीज शब्द : एतिहासिक भौतिकवाद, जिजीविषा, दलित, सौन्दर्यशास्त्रीय, यथार्थ, अभिव्यक्ति और संघर्ष ।

मनुवादी सामाजिक व्यवस्था ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के आधार पर समाज को विभाजित कर असमानता की गहरी खाई पैदा की। समाज का एक वर्ग सभी अधिकारों और सुविधाओं से संपन्न था, जबकि दूसरा वर्ग सम्मानपूर्वक जीवन जीने के अधिकार से भी वंचित रहा। यह वर्ग, जिसे शूद्र कहा गया, पशुओं से भी अधिक दयनीय स्थिति में जीवन व्यतीत करने को विवश था।

भीमराव रामजी आंबेडकर के निरंतर संघर्ष और भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त समान अधिकारों के कारण समाज के वंचित वर्ग में आज चेतना का विकास हुआ है। अब वे अपने अधिकारों, सम्मान और सामाजिक न्याय के प्रति सजग हो रहे हैं। जिनकी पीड़ा और संघर्ष को लंबे समय तक साहित्य में स्थान नहीं मिला, वे आज स्वयं अपने अनुभवों और जीवन-संघर्ष को शब्दों में व्यक्त कर रहे हैं। यही अनुभूत यथार्थ और संवेदना आज दलित साहित्य के रूप में अभिव्यक्त हो रही है।

दलित साहित्य में कँवल भारती का मत है कि “दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है, जिसमे दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा की स्पादित किया है। अपने जीवन-संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनकी उसी अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला के लिए कला नहीं, बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का साहित्य है। इसीलिए कहना न होगा कि वास्तव में दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य की कोटि में आता है।”[1]

भारतीय चातुवर्ण व्यवस्था में सबसे निम्न वर्ग के लोगों को लंबे समय तक अन्याय, शोषण और अत्याचार का सामना करना पड़ा। यद्यपि उनके दुःख और संघर्ष का पूरा विवरण इतिहास में स्पष्ट रूप से दर्ज नहीं हो पाया, फिर भी आधुनिक युग में शिक्षा और जागरूकता के प्रसार ने सदियों से पीड़ित मानवता को अपने अधिकारों के प्रति सचेत किया। संवैधानिक व्यवस्था और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता ने उन्हें अपनी बात कहने का अधिकार प्रदान किया।

इसी जागरूकता के परिणामस्वरूप शोषित और वंचित समाज की पीड़ा, संघर्ष और आक्रोश साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त होने लगे। यही अभिव्यक्ति आगे चलकर दलित साहित्य के रूप में स्थापित हुई। वर्तमान समय में दलित साहित्य को लेकर अनेक प्रकार की धारणाएँ और विचार प्रचलित हैं। इसलिए दलित साहित्य की सही समझ विकसित करने के लिए विभिन्न विद्वानों के विचारों और मतों का सम्यक अध्ययन एवं विश्लेषण आवश्यक है। इन्हीं विचारों के आधार पर दलित साहित्य की अवधारणा को स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि का विचार है कि “दलित साहित्य जन साहित्य है, यानी मास लिटरेर (MASS LITERATURE)। सिर्फ

* एम.ए. (नेट), बाबासाहेब भीमराव अंबेदकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

इतना ही नहीं, मिटरेचर ऑफ एक्शन (literature of action) भी है, जो मानवीय मूल्यों की भूमिका पर सामन्ती मानसिकता के विरुद्ध आक्रोशजनित संघर्ष है। इसी संघर्ष और विद्रोह से उपजा है दलित साहित्य ।"[2]

बहरहाल मणिकर्णिका दलित साहित्य का एक महत्तवपूर्ण दस्तावेज है। मणिकर्णिका डॉ तुलसी राम की आत्मकथा का दूसरा खंड है। मुर्दहिया हिन्दी की प्रसिद्ध रचनाओं में से एक है । यह समाज के यथार्थ को अभिव्यक्त करता है और समाज के महत्त्वपूर्ण घटनाओं को उद्घाटित करता है । यह समाज में व्याप्त घटनाओं के विभिन्न आयामों और पक्षों को रेखांकित करता है। ऐसा कहा जा सकता है कि यह ग्रामीण जीवन का दस्तावेज है। ऐसा वर्णन अन्य किसी रचनाओं में उपलब्ध नहीं है।

मणिकर्णिका में मुर्दहिया के आगे का जीवन है। बनारस में आने पर जीवन के अंत का प्रतीक है मणिकर्णिका, लेकिन लेखक का नया जीवन की शुरुआत हुई । बनारस स्थित मणिकर्णिका को जीवन का अंत होता, किन्तु लेखक के नया लेखकीय परिवेश यही से उदघटित हुआ । अंत ही प्रारंभ है। ऐसा लगता है कि लेखक की यात्रा बनारस के मणिकर्णिका से शुरू हुई और कम्युनिष्ट पार्टी के दफ्तर में समाप्त हो गई। ऐसा जान पड़ता है कि मार्क्सवाद ने लेखक को विश्व दृष्टि प्रदान किया । जिससे वह व्यक्तिगत दुख को समाज के साथ जोड़ कर देखते थे। मुर्दहिया में जो विचार अभिव्यक्त नहीं हुआ वह मणिकर्णिका में विकसित हुई।

यह दलित साहित्य की त्रासदी और भारतीय समाज की विडंवना का आख्यान है। जो अभी तक अनकहे है और अनछुए तथ्य के परतों को खोलती है। यह दलित आत्मकथा नहीं बल्कि दलित साहित्य की भोगी हुई अनुभूति का यथार्थ का चित्रण है। दलित लेखकों ने सदियों तक गुलामी, शोषण भेदभाव अशिक्षा और सामाजिक उपेक्षा का दर्द सहा है आजादी के बाद भारतीय संविधान द्वारा मिले सीमित अवसरों के कारण उन्हें शिक्षा और अपनी बात कहने की शक्ति मिली । दलित लेखक अपनी भावनाओं और अनुभवों को लोक भाषा में अभिव्यक्त किया । लेकिन स्वर्ण समाज के साहित्यिक पूर्वाग्रहों के कारण उनकी रचनाएँ न प्रकाशित हो पाती थी । परंतु समयानुसार बदलाव के कारण उनकी रचनाएं प्रकाशित होने लगी और प्रकाश में आने लगा। उसी कड़ी में मणिकर्णिका प्रकाश में आया। "मणिकर्णिका वाराणसी के गंगा तट मुर्दे जलाने वाले एक घाट का नाम है ।"[3]

मुर्दहिया में जब लेखक के विचारों की मृत्यु हो गई थी तो लेखक ने उसका कायाकल्प मणिकर्णिका में किया । मृत्यु की आसक्ति लेखकीय पृष्ठभूमि को कालजयी बनाती है। यह तथ्य महादेवी के पद से शायद सिद्ध हो ।

"अब न लौटाने कहो
अभिशाप की वह पीर,
बन चुकी स्पन्दन हृदय में
वह नयन में नीर।
अमरता उसमें मनाती है मरण-त्योहार।"[4]

जब से वह BHU में दाखिला लिए तब से वह प्रतिदिन यात्रा पर निकलते थे । वह भ्रमण करते-करते गली, मुहल्ले और घाटों का विवरण प्रस्तुत करते रहते थे । तभी एक दिन सारनाथ के बौद्ध भिक्षु मिले । उन्होंने अपने विचारों से उनके मन को मोह लिया । वह उनके विचारों से इतना प्रभावित हुए कि बौद्ध भिक्षु से दीक्षा भी ले ली। "एक श्रीलंकाई भिक्षु से बौद्ध दीक्षा 21 मार्च, 1988 को मिलीं थी। "[5]

बीएचयू में पढ़ाई के समय तुलसीराम ने कई दुखद अनुभवों का सामना किया। लेकिन इसी दौरान उन्हें दोस्ती, अपनापन और प्रेम भी मिला। ऐसा स्नेह उन्हें गुजराती ब्राह्मण टी. एन. नागर के परिवार से मिला, जब वे उनकी बेटी संगीता नागर को दसवीं कक्षा की अंग्रेज़ी पढ़ाने लगे। यह परिवार प्रसिद्ध सितारवादक और संगीत के प्रोफेसर अमृतलाल नागर के परिवार से जुड़ा था। तुलसीराम ने इस अपनत्व और स्नेह का ज़िक्र अपने लेखन में किया है "मेरे सामाजिक जीवन में नागर जी का परिवार एक ऐतिहासिक मोड़ था। मेरे अपने छूटे हुए परिवार की कमी को इसने सम्पूर्ण रूप से पूरा कर दिया था।"[6]

बीएचयू में बिताए समय का वर्णन करते हुए वहाँ के राजनीतिक माहौल का भी विचारपूर्ण चित्रण किया गया है। तुलसीराम ने कम्युनिस्ट पार्टी की उपलब्धियों और आर.एस.एस. की हिंसक गतिविधियों का ज़िक्र किया है, जो उनके विचारों और चेतना के विकास को दिखाता है। उन्होंने 1 जून 1968 की एक घटना का भी उल्लेख किया है,

जब उन्हें राहुल सांकृत्यायन की किताब "भागो नहीं, दुनिया को बदलो" मिली। इस किताब को पढ़ने के बाद उनके व्यक्तित्व और सोच में बड़ा बदलाव आया। वे लिखते हैं कि... "सचमुच में इस किताब ने मेरी दुनिया हमेशा के लिए बदल दी और मैं कम्युनिस्ट हो गया"[7]

राहुल जी की दूसरी किताबें पढ़ने के बाद तुलसीराम की रुचि बौद्ध धर्म में बढ़ी। उनका कहना था कि ज्ञान प्राप्त करने और सोच विकसित करने की इसी प्रक्रिया में वे पूरी तरह नास्तिक बन गए। अपने ज्ञान को बढ़ाने के लिए उन्होंने बहुतसी किताबें पढ़ीं। उन्होंने लिखा कि- "इस सन्दर्भ में एक अन्य पुस्तक, जिसके सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टिकोण से मेरे ऊपर अत्यन्त गहरा प्रभाव पड़ा, वह थी राहुल सांकृत्यायन की ही वोल्गा से गंगा। ऐतिहासिक भौतिकवाद पर आधारित बीस कहानियों का यह संग्रह उनकी सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक रचना है।"[8]

डांगे ने इस नीति का देशभर में प्रचार किया। वे लिखते है कि "राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन में नेशनल बुर्जुआजी की अवधारणा का मैं प्रबल प्रचारक बन गया और जिस पर मैं आज भी क़ायम हूँ।"[9] तुलसीराम ने इस घटना का ज़िक्र अपनी पुस्तक के इस भाग में भी किया है। वे जिन लोगों के संपर्क में आते थे, उनसे जल्दी प्रभावित हो जाते थे और उनके विचारों को भी अपनाने लगते थे। इसी कारण वे नक्सलवाद से भी प्रभावित हुए। इस विषय पर उन्होंने पूरे एक अध्याय में विस्तार से लिखा है। यह प्रभाव उन पर सुखनन्दन राम नाम के व्यक्ति के संपर्क में आने से पड़ा। उसी के माध्यम से उन्हें कानू सान्याल के बारे में जानकारी मिली, और फिर उन्होंने लिखा कि "एक तरह से मैं कानू सान्याल का भक्त सा बन गया, बार-बार मेरे दिमाग़ में यह बात आती कि कानू सान्याल की तरह ही कन्धे पर बन्दूक रखकर निकल जाना चाहिए। दूसरी तरफ़ माओ की रेड बुक पढ़ने को मन लालायित हो उठा।"[10]

लेखक भारत के सामाजिक व्यवस्था को सुदृढ नहीं मानते है। सामाजिक व्यवस्था में संघर्ष को प्राथमिकता देते है। भारत की सामाजिक संरचना में कोई बदलाव नहीं हो सकता है। तुलसीराम वर्ग और जाती पर अपने विचार रखते है कि "उस समय मेरी समझ में आने लगा था कि वर्ग संघर्ष के माध्यम से भारत में समाजवादी व्यवस्था लागू होना असंभव है। "[11]

उपरोक्त कथन के अनुसार हम पाते है कि जीवन में व्यापक उतार-चाढाव एवं संघर्षों के बावजूद मानवीय संवेदनाओं को अभिव्यक्त किया है। उनकी संवेदना समाज के उन वर्गों के प्रति है जो हमेशा से समाज के हाशिए पर थे । उनको मुख्य धारा शामिल करने का सफल प्रयास लेखक द्वारा किया गया है। आधुनिक दौर में दलित साहित्य में समाज के उपेक्षित और शोषित वर्गों की समस्याओं को अभिव्यक्त करते है। उनकी कृति दलित जीवन के अस्तित्व को समाज के समक्ष यथार्थ रूप में प्रस्तुत करता है। यह भारतीय ग्राम्य जीवन की विडंबना का आख्यान है । जो अनछुए तथ्य की परत को खोलती है।

संदर्भ सूची

1. https://epgp.inflibnet.ac.in/Home/ViewSubject?catid=Ou87QKvJCO+SE37bEZFbPA==(1579865909HND_P12_M1.pdf)
2. वहीं
3. चौहान, चंचल, साहित्य का दलित सौन्दर्यशास्त्र, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, संस्करण 2024, पृष्ठ सं. 216
4. वहीं
5. तुलसीराम, मणिकर्णिका, राजकमल पेपरबैक्स, 9वाँ संस्करण 2025, पृष्ठ सं. 21
6. वही पृष्ठ सं.52
7. वही पृष्ठ सं.61
8. वही पृष्ठ सं.64
9. वही पृष्ठ सं.81
10. वही पृष्ठ सं.94
11. वही पृष्ठ पृष्ठ सं.172

वृद्ध महिलाओं में अवसाद एवं अकेलेपन का अध्ययन

अनिता कुमारी*

सार–

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य वृद्ध महिलाओं में अवसाद एवं अकेलेपन की स्थिति का अध्ययन करना है। बढ़ती आयु के साथ शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक परिवर्तनों के कारण वृद्ध महिलाएँ विशेष रूप से अवसाद और अकेलेपन की समस्या से ग्रस्त हो जाती हैं। इस अध्ययन में गया जिले के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र की 55 से 80 वर्ष आयु वर्ग की 50 वृद्ध महिलाओं को नमूने के रूप में चुना गया, जिनमें 25 विधवा तथा 25 विवाहित (शादीशुदा) महिलाएँ शामिल हैं। उपकरण के रूप में साक्षात्कार प्रश्नावली, सामाजिक–आर्थिक डेटा शीट, Depression Scale (GDS) और UCLA Loneliness Scale का उपयोग किया गया। परिणामों से पता चला कि विधवा वृद्ध महिलाओं में अवसाद और अकेलेपन का स्तर विवाहित महिलाओं की तुलना में अधिक था। इसके अतिरिक्त, ग्रामीण वृद्ध महिलाओं में अकेलापन शहरी महिलाओं की तुलना में अधिक पाया गया।अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि विधवा वृद्ध महिलाओं में अवसाद एवं अकेलेपन का स्तर विवाहित वृद्ध महिलाओं की अपेक्षा अधिक पाया गया। सामाजिक समर्थन, पारिवारिक संबंध एवं आर्थिक स्थिति अवसाद और अकेलेपन को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक हैं। अध्ययन के निष्कर्ष समाज एवं नीति–निर्माताओं के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

मूल शब्दः वृद्ध महिलाएँ, अवसाद, अकेलापन, विधवा, सामाजिक समर्थन, मानसिक स्वास्थ्य

वृद्धावस्था मानव जीवन की एक महत्वपूर्ण अवस्था है, जिसमें व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा भावनात्मक परिवर्तनों का सामना करना पड़ता है। आधुनिक समाज में संयुक्त परिवार प्रणाली के विघटन, नगरीकरण, औद्योगीकरण तथा जीवनशैली में आए परिवर्तनों के कारण वृद्ध व्यक्तियों, विशेषकर वृद्ध महिलाओं की समस्याएँ दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। वृद्ध महिलाएँ प्रायः दोहरे बोझ का सामना करती हैं—एक ओर बढ़ती उम्र से जुड़ी स्वास्थ्य समस्याएँ और दूसरी ओर सामाजिक उपेक्षा एवं अकेलापन।

अवसाद वृद्धावस्था की एक सामान्य मानसिक समस्या है, जो निरंतर उदासी, निराशा, रुचि की कमी तथा आत्महीनता की भावना से जुड़ी होती है। वहीं अकेलापन एक ऐसी भावनात्मक अवस्था है, जिसमें व्यक्ति स्वयं को सामाजिक एवं भावनात्मक रूप से अलग–थलग महसूस करता है। पति की मृत्यु, बच्चों का अलग रहना, आर्थिक निर्भरता तथा सामाजिक सहभागिता में कमी वृद्ध महिलाओं में अकेलेपन एवं अवसाद को बढ़ावा देती है। विशेष रूप से विधवा वृद्ध महिलाओं की स्थिति अधिक दयनीय होती है। उन्हें न केवल भावनात्मक क्षति झेलनी पड़ती है, बल्कि कई बार सामाजिक भेदभाव एवं आर्थिक असुरक्षा का भी सामना करना पड़ता है। ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में उपलब्ध संसाधनों, पारिवारिक संरचना एवं सामाजिक समर्थन में अंतर होने के कारण वृद्ध महिलाओं की मानसिक स्थिति में भी अंतर देखा जाता है।

वृद्धावस्था में मानसिक स्वास्थ्य समस्याएँ विश्व स्तर पर चिंता का विषय बनी हुई हैं। अवसाद और अकेलापन वृद्ध व्यक्तियों में आम रूप से देखी जाने वाली समस्याएँ हैं। विशेष रूप से महिलाएँ, सामाजिक, आर्थिक और पारिवारिक कारकों के कारण इस स्थिति से अधिक प्रभावित होती हैं।

शर्मा (2016) के अध्ययन के अनुसार, वृद्धावस्था में शारीरिक कमजोरी, स्वास्थ्य समस्याएँ, सामाजिक अलगाव और आर्थिक निर्भरता महिलाओं में अवसाद को बढ़ावा देती हैं। अध्ययन में पाया कि वृद्ध महिलाएँ, जो आर्थिक रूप से असुरक्षित और सामाजिक रूप से अलग–थलग हैं, उनमें अवसाद के लक्षण अधिक गंभीर और व्यापक होते हैं।[1]

सिंह (2014) ने पाया कि विधवा महिलाएँ, जिन्हें जीवनसाथी का समर्थन नहीं मिलता, वे अवसाद और चिंता के उच्च स्तर का अनुभव करती हैं। अध्ययन में पाया कि विधवा वृद्ध महिलाएँ मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं के प्रति अधिक संवेदनशील होती हैं और उनके जीवन की गुणवत्ता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।[2]

---

* शोध छात्रा, मनोविज्ञान विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

विश्व स्वास्थ्य संगठन (2017) ने रिपोर्ट किया कि विश्वभर में वृद्ध महिलाओं में अवसाद का प्रचलन पुरुषों की तुलना में अधिक है और यह उनकी जीवन गुणवत्ता को प्रभावित करता है। अध्ययन में पाया कि महिलाओं में अवसाद और अकेलेपन की घटनाएँ अधिक प्रचलित हैं, और यह उनके सामाजिक, पारिवारिक और आर्थिक जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं।[3]

वर्मा (2012) के अनुसार, अकेलेपन केवल भावनात्मक अनुभव नहीं है, बल्कि यह मानसिक स्वास्थ्य के लिए गंभीर जोखिम है। वृद्ध महिलाएँ पति की मृत्यु, बच्चों के अलग रहने और सामाजिक सहभागिता में कमी के कारण अधिक अकेली महसूस करती हैं। अध्ययन में पाया कि अकेलेपन और सामाजिक अलगाव वृद्ध महिलाओं में अवसाद और चिंता के जोखिम को बढ़ाते हैं।[4] वृद्ध महिलाओं में सामाजिक समर्थन की कमी सीधे अवसाद और अकेलेपन से जुड़ी है। सामाजिक संपर्क, परिवारिक संबंध और समुदाय में भागीदारी उन्हें मानसिक रूप से स्वस्थ बनाए रखने में मदद करते हैं। अध्ययन में पाया कि जिन वृद्ध महिलाओं को परिवार, मित्र और समुदाय से पर्याप्त समर्थन मिलता है, उनमें अवसाद और अकेलेपन के लक्षण कम होते हैं।

अंजुम और शाइफ (2015) के अध्ययन में पाया गया कि विधवा वृद्ध महिलाओं में अवसाद और अकेलेपन का स्तर विवाहित महिलाओं की तुलना में अधिक है। जीवनसाथी की अनुपस्थिति, सामाजिक भेदभाव और आर्थिक असुरक्षा विधवा महिलाओं की मानसिक स्थिति को प्रभावित करती है। अध्ययन में पाया कि विधवा महिलाएँ भावनात्मक और सामाजिक रूप से अधिक असुरक्षित होती हैं, जिससे उनके अवसाद और अकेलेपन के स्तर में वृद्धि होती है।[5]

सिंह व कौर (2018) ने अध्ययन किया कि ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक और आर्थिक संसाधनों की कमी के कारण अकेलापन और अवसाद अधिक पाया गया। शहरी क्षेत्रों में वृद्ध महिलाएँ स्वास्थ्य सेवाओं, मनोरंजन गतिविधियों और सामाजिक नेटवर्क के कारण बेहतर मानसिक स्वास्थ्य रखती हैं। अध्ययन में पाया कि ग्रामीण वृद्ध महिलाएँ शहरी महिलाओं की तुलना में मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं के लिए अधिक संवेदनशील हैं। सिंह ने यह भी उल्लेख किया कि सामाजिक समर्थन वृद्ध महिलाओं में अवसाद और अकेलेपन को कम करने का सबसे महत्वपूर्ण कारक माना जाता है। परिवार, मित्र और समुदायिक नेटवर्क मानसिक स्वास्थ्य और जीवन संतोष को बनाए रखने में सहायक होते हैं। अध्ययन में पाया कि पर्याप्त सामाजिक समर्थन प्राप्त वृद्ध महिलाएँ मानसिक रूप से अधिक स्थिर और जीवन में संतोषपूर्ण रहती हैं।[6]

कुमार व वर्मा (2016) के अनुसार, पारिवारिक सहभागिता, आर्थिक सुरक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता वृद्ध महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य में सुधार लाने में निर्णायक भूमिका निभाती है। अध्ययन में पाया कि जिन वृद्ध महिलाओं को परिवार का सहयोग, आर्थिक समर्थन और स्वास्थ्य सेवाओं की सुविधा प्राप्त होती है, उनमें अवसाद और अकेलेपन के लक्षण कम पाए जाते हैं।[7]

अतः स्पष्ट होता है कि वृद्ध महिलाएँकृविशेष रूप से विधवा और ग्रामीण क्षेत्र की महिलाएँकृअवसाद और अकेलेपन के उच्च स्तर से प्रभावित होती हैं। सामाजिक समर्थन, परिवारिक सहभागिता और आर्थिक सुरक्षा उन्हें मानसिक रूप से स्थिर बनाए रखने में सहायक होते हैं। वर्तमान अध्ययन गया जिले की वृद्ध महिलाओं के लिए विशेष जानकारी प्रदान करता है, जो नीतिगत निर्णय और समाज कल्याण कार्यक्रमों के लिए उपयोगी हो सकती है।

गया जी जिला सामाजिक–सांस्कृतिक विविधताओं से युक्त है, जहाँ शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में वृद्ध महिलाओं की जीवन परिस्थितियाँ भिन्न हैं। इस संदर्भ में यह अध्ययन गया जिले की वृद्ध महिलाओं में अवसाद एवं अकेलेपन की स्थिति को समझने का एक प्रयास है। यह अध्ययन न केवल शैक्षणिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि समाज कल्याण एवं वृद्ध देखभाल नीतियों के निर्माण में भी सहायक सिद्ध हो सकता है।

परिकल्पना–

1. विधवा वृद्ध महिलाओं में विवाहित वृद्ध महिलाओं की अपेक्षा अवसाद अधिक पाया जाएगा।
2. विधवा वृद्ध महिलाओं में अकेलेपन का स्तर अधिक होगा।
3. ग्रामीण वृद्ध महिलाओं में शहरी वृद्ध महिलाओं की तुलना में अधिक अकेलापन पाया जाएगा।

अध्ययन के उद्देश्य

1. वृद्ध महिलाओं में अवसाद के स्तर का अध्ययन करना।
2. वृद्ध महिलाओं में अकेलेपन की स्थिति का अध्ययन करना।
3. विधवा एवं विवाहित वृद्ध महिलाओं में अवसाद एवं अकेलेपन का तुलनात्मक अध्ययन करना।
4. शहरी एवं ग्रामीण वृद्ध महिलाओं में अवसाद एवं अकेलेपन के अंतर का अध्ययन करना।

शोध पद्धति–

अ. अनुसंधान की प्रकृति– यह अध्ययन वर्णनात्मक एवं सहसंबंधात्मक स्वरूप का है। इसमें मात्रात्मक डेटा एकत्र किया गया है।

ब. नमूना– इस अध्ययन में गया जिले के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों से 50 वृद्ध महिलाओं का चयन किया गया। कुल नमूना (25 विधवा महिलाएँ एवं 25 विवाहित महिलाएँ) जिनकी आयु सीमा 55–75 वर्ष थी को अध्ययन में शामिल किया गया।

3. उपकरणः– अध्ययन में निम्नलिखित मनोवैज्ञानिक मापन उपकरणों का उपयोग किया गया–

क) साक्षात्कार प्रश्नावली – सामाजिक समर्थन, परिवारिक स्थिति, स्वास्थ्य एवं आर्थिक स्थिति की जानकारी के लिए वृद्ध महिलाओं में अवसाद एवं अकेलेपन का कारण पता किया गया ।

ख) सामाजिक–आर्थिक डेटा शीट– वृद्ध महिलाओं से उनकी उम्र, विवाहिक स्थिति, परिवार संरचना, आय स्तर, शिक्षा आदि का रिकॉर्ड को लिया गया है।

ग) Depression Scale (GDS) और **UCLA Loneliness Scale** का उपयोग किया गया। परिणामों से पता चला कि विधवा वृद्ध महिलाओं में अवसाद और अकेलेपन का स्तर विवाहित महिलाओं की तुलना में अधिक था। इसके अतिरिक्त, ग्रामीण वृद्ध महिलाओं में अकेलापन शहरी महिलाओं की तुलना में अधिक पाया गया।

4. डेटा संग्रह– शोधकर्ता ने दोनों क्षेत्रों (गया नगर एवं उसके आसपास के ग्रामीण क्षेत्रों में बोधगया, मानपुर, डोभी, टिकारी) में जाकर वृद्ध महिलाओं से प्रत्यक्ष साक्षात्कार एवं प्रश्नावली के माध्यम से जानकारी संकलित की।

5. सांख्यिकीय तकनीकें–संग्रहित आँकड़ों का विश्लेषण करने के लिए Mean, SD, t-test का उपयोग किया गया।

परिणाम–

(1). अवसादः– परिकल्पना–1 में विधवा वृद्ध एवं विवाहित वृद्ध महिलाओं में अवसाद के सार्थक अंतर को देखना है। समूहों के प्राप्तांकों का वर्गीकरण सारणी–1 में निरूपित किया जा रहा है और उसे t, द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है।

सारणी–01 : विधवा वृद्ध एवं विवाहित वृद्ध महिलाओं में अवसाद के प्राप्तांकों का सार्थक अंतर

वृद्ध महिला समूह	महिलाओं में अवसाद			टी–अनुपात	सार्थकता का स्तर
	संख्या	माध्य	प्रमाणिक विचलन		
विधवा	25	22.46	4.27	5.23	$p<0.01$
विवाहित	25	15.89	3.53		

सारणी–01 में विधवा वृद्ध महिलाओं में विवाहित वृद्ध महिलाओं की अपेक्षा अवसाद के औसत स्कोर में सार्थक अंतर पाया गया ($t=5.23$, $df=48$, $p<0.01$)। विधवा वृद्ध महिलाओं में विवाहित वृद्ध महिलाओं की अपेक्षा अवसाद अधिक है। अतः प्राप्त परिणाम परिकल्पना सार्थकता को दर्शाती है। विधवा वृद्ध महिलाओं का माध्य 22.46 पाया गया जब कि विवाहित वृद्ध महिलाओं का माध्य 15.89 पाया गया। अतः परीक्षण के परिणाम से स्पष्ट हुआ कि विधवा वृद्ध महिलाओं में अवसाद का स्तर विवाहित वृद्ध महिलाओं की तुलना में सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण रूप से अधिक है।

(2). अकेलापनः– परिकल्पना–1 में विधवा वृद्ध एवं विवाहित वृद्ध महिलाओं में अकेलापन के सार्थक अंतर को देखना है। समूहों के प्राप्तांकों का वर्गीकरण सारणी–2 में निरूपित किया जा रहा है और उसे t, द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है।

सारणी–02 : विधवा वृद्ध एवं विवाहित वृद्ध महिलाओं में अकेलापन के प्राप्तांकों का सार्थक अंतर

वृद्ध महिला समूह	महिलाओं में अकेलापन			टी–अनुपात	सार्थकता का स्तर
	संख्या	माध्य	प्रमाणिक विचलन		
विधवा	25	20.61	3.83	6.01	$p<0.01$
विवाहित	25	14.23	3.12		

सारणी–02 में विधवा वृद्ध महिलाओं में विवाहित वृद्ध महिलाओं में अकेलापन के होने पर का औसत स्कोर में सार्थक अंतर पाया गया ($t=6.01$, $df=48$, $p<0.01$)। विधवा वृद्ध महिलाओं में अकेलापन अधिक पाया है। अतः प्राप्त परिणाम परिकल्पना सार्थकता को दर्शाती है। विधवा वृद्ध महिलाओं का माध्य 20.61 पाया गया जब कि विवाहित वृद्ध महिलाओं का माध्य 14.23 पाया गया। अतः परीक्षण के परिणाम से स्पष्ट हुआ कि

विधवा वृद्ध महिलाओं में अकेलेपन का स्तर विवाहित वृद्ध महिलाओं की तुलना में स्पष्ट रूप से अधिक पाया गया।

3). अकेलापनः– परिकल्पना–3 में ग्रामिण वृद्ध एवं शहरी विवाहित वृद्ध महिलाओं में अकेलापन के सार्थक अंतर को देखना है। समूहों के प्राप्तांकों का वर्गीकरण सारणी–3 में निरूपित किया जा रहा है और उसे t, द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है।

सारणी–03 : ग्रामीण वृद्ध एवं शहरी वृद्ध महिलाओं में अकेलापन के प्राप्तांकों का सार्थक अंतर

वृद्ध महिला समूह	ग्रामीण वृद्ध एवं शहरी वृद्ध महिलाओं में अकेलापन			टी–अनुपात	सार्थकता का स्तर
	संख्या	माध्य	प्रमाणिक विचलन		
शहरी	25	19.82	3.51	4.38	$p<0.01$
ग्रामीण	25	15.42	3.22		

सारणी–03 में ग्रामीण वृद्ध एवं शहरी वृद्ध महिलाओं में अकेलापन के होने पर का औसत स्कोर में सार्थक अंतर पाया गया ($t=4.38$, $df=48$, $p<0.01$)। शहरी वृद्ध महिलाओं में अकेलापन अधिक पाया है। अतः प्राप्त परिणाम परिकल्पना सार्थकता को दर्शाती है। शहरी वृद्ध महिलाओं का माध्य 19.82 पाया गया जब कि ग्रामीण वृद्ध महिलाओं का माध्य 15.42 पाया गया। अतः परीक्षण के परिणाम से स्पष्ट हुआ कि शहरी वृद्ध महिलाओं में अकेलेपन का स्तर ग्रामिण वृद्ध महिलाओं की तुलना में स्पष्ट रूप से अधिक पाया गया।

चर्चा– अध्ययन के परिणामों से स्पष्ट हुआ कि विधवा वृद्ध महिलाएँ विवाहित वृद्ध महिलाओं की तुलना में अधिक अवसाद और अकेलेपन का अनुभव करती हैं। इसका मुख्य कारण सामाजिक और भावनात्मक समर्थन की कमी है। पति के अभाव में, विधवा महिलाएँ आर्थिक निर्भरता, सामाजिक अलगाव और भावनात्मक असुरक्षा का सामना करती हैं, जो मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती है।

ग्रामीण वृद्ध महिलाओं में अकेलेपन का स्तर शहरी वृद्ध महिलाओं की तुलना में अधिक पाया गया। यह मुख्यतः संसाधनों की कमी, पारिवारिक संरचना और सामाजिक संपर्क की सीमाओं के कारण है। शहरी वृद्ध महिलाएँ सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियों में अधिक भाग लेती हैं, जिससे उनका मानसिक स्वास्थ्य बेहतर बना रहता है। अध्ययन यह भी दर्शाता है कि वैवाहिक स्थिति, सामाजिक सहभागिता और पारिवारिक समर्थन वृद्ध महिलाओं के अवसाद और अकेलेपन को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक हैं। इसके परिणाम समाज और नीति निर्माताओं के लिए महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि वृद्ध महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य को सुधारने के लिए लक्षित कार्यक्रमों और नीतियों की आवश्यकता है।

निष्कर्ष– विधवा वृद्ध महिलाओं में अवसाद और अकेलेपन का स्तर विवाहित वृद्ध महिलाओं की तुलना में अधिक पाया गया। ग्रामीण वृद्ध महिलाओं में अकेलेपन का स्तर शहरी वृद्ध महिलाओं की तुलना में अधिक है। सामाजिक समर्थन, पारिवारिक सहभागिता और आर्थिक सुरक्षा वृद्ध महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। नीति–निर्माताओं और समाज को वृद्ध महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान देना चाहिए, विशेषकर विधवा और ग्रामीण महिलाओं के लिए।

इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि वृद्ध महिलाओं के अवसाद और अकेलेपन को कम करने के लिए सामाजिक, पारिवारिक और मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं का समन्वित प्रयास आवश्यक है।

संदर्भ सूची

1. शर्मा, आर. (2016) विकासात्मक मनोविज्ञान, आगरा, विनोद पुस्तक मंदिर।
2. सिंह, ए.के. (2014) सामाजिक मनोविज्ञान, दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास।
3. विश्व स्वास्थ्य संगठन (2017) वृद्ध व्यक्तियों का मानसिक स्वास्थ्य, जेनेवा।
4. वर्मा, एस.के. (2012) वृद्धावस्था में मानसिक स्वास्थ्य। नई दिल्ली, कनिष्का पब्लिशर्स।
5. अंजुम, एस., एवं शाइफ, आर. (2015) विधवा वृद्ध महिलाओं की मानसिक भलाई, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ सोशल साइंसेज, 5(2), 45–53।
6. सिंह, आर., एवं कौर, पी. (2018) ग्रामीण और शहरी वृद्ध महिलाओं में अवसाद और अकेलापन, इंडियन जर्नल ऑफ जिरोन्टोलॉजी, 32(1), 25–38।
7- कुमार, वी., एवं वर्मा, एस. (2016) वृद्ध महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य में पारिवारिक समर्थन की भूमिका, जर्नल ऑफ हेल्थ एंड सोशल साइंसेज, 7(2), 12–20।

नए राज्यों की मांग : भारतीय संघवाद, क्षेत्रीय आकांक्षाएँ एवं प्रशासनिक चुनौतियाँ

अनिल कुमार सिंह*

सारांश

भारत एक विशाल और विविधतापूर्ण राष्ट्र है, जहाँ भाषा, संस्कृति, क्षेत्र, जाति तथा आर्थिक परिस्थितियों में व्यापक भिन्नताएँ पाई जाती हैं। स्वतंत्रता के बाद भारतीय संघीय व्यवस्था को मजबूत बनाने के उद्देश्य से राज्यों का पुनर्गठन किया गया, किंतु समय–समय पर विभिन्न क्षेत्रों से नए राज्यों की मांग उठती रही है। इन मांगों के पीछे क्षेत्रीय असंतोष, प्रशासनिक उपेक्षा, आर्थिक विषमता, सांस्कृतिक पहचान तथा राजनीतिक प्रतिनिधित्व जैसे अनेक कारण रहे हैं।

यह शोध पत्र भारत में नए राज्यों की मांग के ऐतिहासिक विकास, प्रमुख आंदोलनों, संवैधानिक प्रावधानों तथा उनके राजनीतिक और प्रशासनिक प्रभावों का अध्ययन प्रस्तुत करता है। अध्ययन में तेलंगाना, उत्तराखंड, झारखंड तथा छत्तीसगढ़ जैसे राज्यों के गठन के उदाहरणों का विश्लेषण किया गया है। साथ ही विदर्भ, गोरखालैंड, बुंदेलखंड और हरित प्रदेश जैसी वर्तमान मांगों की भी समीक्षा की गई है।

यह अध्ययन द्वितीयक स्रोतों पुस्तकों, शोध पत्रों, सरकारी दस्तावेजों और समाचार पत्रों पर आधारित है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि नए राज्यों की मांग भारतीय लोकतंत्र की स्वाभाविक प्रक्रिया है, जो क्षेत्रीय आकांक्षाओं और प्रशासनिक आवश्यकताओं से जुड़ी हुई है। हालांकि छोटे राज्यों से प्रशासनिक सुविधा और विकास की संभावनाएँ बढ़ती हैं, किंतु इसके साथ क्षेत्रवाद, संसाधन विवाद और राजनीतिक अस्थिरता जैसी चुनौतियाँ भी उत्पन्न हो सकती हैं।

शब्द कुंजी : नए राज्य, भारतीय संघवाद, क्षेत्रवाद, राज्य पुनर्गठन, तेलंगाना आंदोलन, गोरखालैंड, विदर्भ, प्रशासनिक विकेंद्रीकरण, क्षेत्रीय पहचान, संविधान

प्रस्तावना

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक राष्ट्र है, जिसकी सबसे बड़ी विशेषता उसकी विविधता है। यहाँ विभिन्न भाषाएँ, संस्कृतियाँ, धर्म और क्षेत्रीय पहचानें सह–अस्तित्व में रहती हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय नेतृत्व के सामने सबसे बड़ी चुनौती थी। ऐसी राजनीतिक और प्रशासनिक व्यवस्था का निर्माण करना जो राष्ट्रीय एकता बनाए रखते हुए क्षेत्रीय आकांक्षाओं को भी सम्मान दे सके। इसी उद्देश्य से भारतीय संविधान ने संघीय व्यवस्था को अपनाया तथा राज्यों के पुनर्गठन के लिए संसद को विशेष अधिकार प्रदान किए।

स्वतंत्रता के समय भारत में राज्यों की सीमाएँ मुख्यतः औपनिवेशिक प्रशासनिक सुविधा के आधार पर निर्धारित थीं। अनेक क्षेत्रों में भाषाई, सांस्कृतिक और आर्थिक असमानताएँ विद्यमान थीं। जनता की मांग थी कि राज्यों का गठन उनकी भाषा, संस्कृति और क्षेत्रीय पहचान के अनुसार किया जाए। परिणामस्वरूप 1956 ई. में राज्य पुनर्गठन अधिनियम लागू किया गया, जिसके माध्यम से भाषाई आधार पर राज्यों का पुनर्गठन किया गया।

हालाँकि 1956 के पुनर्गठन के बाद भी नए राज्यों की मांग समाप्त नहीं हुई। समय–समय पर विभिन्न क्षेत्रों में अलग राज्य बनाने के आंदोलन उभरते रहे। इन आंदोलनों के पीछे केवल भाषाई पहचान ही नहीं, बल्कि आर्थिक पिछड़ापन, प्रशासनिक उपेक्षा, सांस्कृतिक अस्मिता और राजनीतिक प्रतिनिधित्व की समस्याएँ भी शामिल थीं।

भारत में नए राज्यों की मांग का सबसे प्रमुख उदाहरण तेलंगाना आंदोलन है। लंबे संघर्ष और जनआंदोलन के बाद 2014 में तेलंगाना को आंध्र प्रदेश से अलग कर भारत का 29वाँ राज्य बनाया गया। इसी प्रकार 2000 में उत्तराखंड, झारखंड और छत्तीसगढ़ का गठन किया गया। इन राज्यों की मांग मुख्यतः प्रशासनिक सुविधा, क्षेत्रीय विकास और जनजातीय पहचान से जुड़ी हुई थी।

* नेट (राजनीति विज्ञान)

नए राज्यों की मांग भारतीय लोकतंत्र की एक महत्वपूर्ण राजनीतिक प्रक्रिया बन चुकी है। वर्तमान समय में विदर्भ, गोरखालैंड, बुंदेलखंड, हरित प्रदेश, पूर्वांचल और कोडगु जैसे क्षेत्रों में अलग राज्य की मांग समय–समय पर उठती रहती है। इन आंदोलनों से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय संघवाद एक गतिशील प्रक्रिया है, जिसमें क्षेत्रीय आकांक्षाओं को लोकतांत्रिक माध्यम से अभिव्यक्ति मिलती है।

नए राज्यों की मांग के अनेक कारण हैं। पहला कारण प्रशासनिक सुविधा है। बड़े राज्यों में शासन और विकास योजनाओं का प्रभावी संचालन कठिन हो जाता है। छोटे राज्यों में प्रशासन जनता के अधिक निकट होता है तथा स्थानीय समस्याओं का समाधान अपेक्षाकृत शीघ्र किया जा सकता है।

दूसरा महत्वपूर्ण कारण आर्थिक असमानता है। कई क्षेत्रों के लोगों का मानना होता है कि उनके क्षेत्र की उपेक्षा की जा रही है तथा राज्य सरकार विकास संसाधनों का समान वितरण नहीं कर रही। उदाहरणस्वरूप तेलंगाना आंदोलन के दौरान यह तर्क दिया गया कि संयुक्त आंध्र प्रदेश में तेलंगाना क्षेत्र आर्थिक और शैक्षिक दृष्टि से उपेक्षित रहा।

तीसरा कारण सांस्कृतिक और भाषाई पहचान है। कई क्षेत्रों के लोग अपनी भाषा, संस्कृति और परंपराओं को संरक्षित करने के लिए पृथक राज्य की मांग करते हैं। उत्तर–पूर्व भारत में बने कई राज्यों के गठन के पीछे जनजातीय और सांस्कृतिक पहचान की भूमिका महत्वपूर्ण रही है।

चौथा कारण राजनीतिक प्रतिनिधित्व है। कई बार क्षेत्रीय समुदायों को यह महसूस होता है कि बड़े राज्यों में उनकी राजनीतिक भागीदारी और प्रतिनिधित्व सीमित है। पृथक राज्य बनने से स्थानीय नेतृत्व को उभरने का अवसर मिलता है।

हालाँकि नए राज्यों की मांग के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पक्ष हैं। सकारात्मक दृष्टि से छोटे राज्यों में प्रशासनिक दक्षता, स्थानीय विकास और जनसहभागिता बढ़ सकती है। छोटे राज्यों के उदाहरण के रूप में उत्तराखंड और छत्तीसगढ़ में प्रशासनिक सुधार तथा विकास की कुछ उपलब्धियाँ देखी गई हैं।

दूसरी ओर आलोचक मानते हैं कि अत्यधिक छोटे राज्यों का निर्माण क्षेत्रवाद और राजनीतिक अस्थिरता को बढ़ावा दे सकता है। इससे संसाधनों के बँटवारे, सीमा विवाद और प्रशासनिक खर्च में वृद्धि जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। कई बार राजनीतिक दल चुनावी लाभ के लिए नए राज्यों की मांग को समर्थन देते हैं, जिससे यह विषय विकास के बजाय राजनीतिक रणनीति का हिस्सा बन जाता है।

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 3 संसद को नए राज्यों के निर्माण, सीमाओं में परिवर्तन और राज्यों के नाम बदलने का अधिकार प्रदान करता है। यह प्रावधान भारतीय संघवाद की लचीली प्रकृति को दर्शाता है। संविधान निर्माताओं ने यह समझा था कि समय के साथ प्रशासनिक और राजनीतिक आवश्यकताओं के अनुसार राज्यों की संरचना में परिवर्तन की आवश्यकता पड़ सकती है।

समकालीन भारत में नए राज्यों की मांग केवल प्रशासनिक प्रश्न नहीं रह गई है, बल्कि यह पहचान, विकास, संसाधनों और राजनीतिक शक्ति से जुड़ा मुद्दा बन चुकी है। इसलिए इस विषय का अध्ययन भारतीय राजनीति, संघवाद और लोकतंत्र को समझने के लिए अत्यंत आवश्यक है।

अतः नए राज्यों की मांग भारतीय संघीय व्यवस्था की एक सतत और गतिशील प्रक्रिया है। यह एक ओर क्षेत्रीय आकांक्षाओं और लोकतांत्रिक भागीदारी का प्रतीक है, तो दूसरी ओर राष्ट्रीय एकता, प्रशासनिक संतुलन और संसाधन प्रबंधन की चुनौती भी प्रस्तुत करती है। इसी संदर्भ में यह शोध पत्र नए राज्यों की मांग के विभिन्न आयामों का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

उद्देश्य

इस शोध पत्र के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. भारत में नए राज्यों की मांग के ऐतिहासिक विकास का अध्ययन करना।
2. नए राज्यों की मांग के प्रमुख कारणों का विश्लेषण करना।
3. नए राज्यों के निर्माण के संवैधानिक प्रावधानों का अध्ययन करना।
4. नए राज्यों की मांग के सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभावों का मूल्यांकन करना।

साहित्य की समीक्षा

1. ग्रेनविल ऑस्टिन का दृष्टिकोण (1999)

ग्रेनविल ऑस्टिन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक The Indian Constitution: Cornerstone of a Nation में भारतीय संविधान और संघीय व्यवस्था का विस्तृत विश्लेषण किया है। उनके अनुसार भारतीय संविधान की

सबसे बड़ी विशेषता उसकी लचीलापन (Flexibility) है, जिसने समय के अनुसार राज्यों के पुनर्गठन और नए राज्यों के निर्माण को संभव बनाया।

ऑस्टिन का मानना है कि भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में क्षेत्रीय आकांक्षाओं को अनदेखा करना राष्ट्रीय एकता के लिए खतरा बन सकता था। इसलिए नए राज्यों का निर्माण भारतीय लोकतंत्र की आवश्यक प्रक्रिया थी। उन्होंने यह भी कहा कि भारतीय संघवाद "सहकारी संघवाद" (Cooperative Federalism) पर आधारित है, जिसमें केंद्र और राज्य मिलकर शासन व्यवस्था को संचालित करते हैं।

ऑस्टिन के अनुसार छोटे राज्यों के निर्माण से स्थानीय प्रशासन अधिक प्रभावी बनता है तथा जनता की भागीदारी बढ़ती है। हालांकि उन्होंने यह चेतावनी भी दी कि अत्यधिक क्षेत्रवाद राष्ट्रीय एकता के लिए चुनौती बन सकता है।

2. पॉल आर. ब्रास (Paul R. Brass) का अध्ययन (1991)

पॉल आर. ब्रास ने भाषाई राजनीति, क्षेत्रीय आंदोलनों और पहचान की राजनीति पर विस्तृत शोध किया। उनकी पुस्तक Ethnicity and Nationalism: Theory and Comparison भारतीय राज्यों के पुनर्गठन और नए राज्यों की मांग को समझने में अत्यंत उपयोगी मानी जाती है।

ब्रास के अनुसार क्षेत्रीय और भाषाई पहचान राजनीतिक लामबंदी का महत्वपूर्ण आधार बन जाती है। उन्होंने स्पष्ट किया कि नए राज्यों की मांग केवल प्रशासनिक सुविधा का प्रश्न नहीं है, बल्कि यह सांस्कृतिक पहचान, राजनीतिक प्रतिनिधित्व और संसाधनों के नियंत्रण से भी जुड़ी हुई है।

उन्होंने आंध्र आंदोलन, तेलंगाना आंदोलन तथा पंजाबी सूबा आंदोलन का अध्ययन करते हुए बताया कि जब किसी क्षेत्र को यह महसूस होता है कि उसकी भाषा, संस्कृति या आर्थिक हितों की उपेक्षा हो रही है, तब अलग राज्य की मांग उभरती है।

ब्रास का यह भी मत है कि भारतीय लोकतंत्र ने क्षेत्रीय आंदोलनों को संवैधानिक ढाँचे के भीतर समाहित कर राष्ट्रीय एकता को बनाए रखने में सफलता प्राप्त की।

3. बी.एल. फड़िया का योगदान (2018)

बी.एल. फड़िया ने भारतीय शासन व्यवस्था और राजनीति पर अपने अध्ययनों में नए राज्यों की मांग को प्रशासनिक एवं राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण बताया है।

फड़िया के अनुसार बड़े राज्यों में प्रशासनिक नियंत्रण कठिन हो जाता है, जिसके कारण कई क्षेत्र विकास की दृष्टि से पिछड़ जाते हैं। छोटे राज्यों में प्रशासन जनता के अधिक निकट होता है तथा स्थानीय समस्याओं का समाधान शीघ्र किया जा सकता है।

उन्होंने विशेष रूप से उत्तराखंड, झारखंड और छत्तीसगढ़ के गठन का विश्लेषण करते हुए बताया कि इन राज्यों की मांग मुख्यतः प्रशासनिक उपेक्षा और विकास असंतुलन के कारण उत्पन्न हुई थी।

हालाँकि फड़िया ने यह भी स्पष्ट किया कि केवल छोटे राज्य बना देने से विकास सुनिश्चित नहीं होता। सुशासन, राजनीतिक स्थिरता और संसाधनों का उचित प्रबंधन भी आवश्यक है।

4. रजनी कोठारी का दृष्टिकोण (1988)

रजनी कोठारी ने भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों और पहचान आधारित राजनीति की भूमिका का अध्ययन किया।

उनके अनुसार नए राज्यों की मांग भारतीय लोकतंत्र की स्वाभाविक प्रक्रिया है क्योंकि लोकतंत्र विभिन्न सामाजिक और क्षेत्रीय समूहों को अपनी आकांक्षाएँ व्यक्त करने का अवसर देता है।

कोठारी ने यह बताया कि राज्यों के पुनर्गठन और नए राज्यों के निर्माण के बाद भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों का प्रभाव बढ़ा। इससे एक ओर लोकतंत्र अधिक प्रतिनिधिक बना, वहीं दूसरी ओर राष्ट्रीय राजनीति में गठबंधन युग की शुरुआत हुई।

उन्होंने यह भी कहा कि क्षेत्रीय पहचान को पूरी तरह नकारना संभव नहीं है, क्योंकि यह लोगों की सांस्कृतिक और सामाजिक चेतना से जुड़ी होती है।

5. बीपिन चंद्र का ऐतिहासिक विश्लेषण (2009)

बीपिन चंद्र ने अपनी पुस्तक India Since Independence में स्वतंत्रता के बाद भारत की राजनीतिक और प्रशासनिक चुनौतियों का विस्तृत अध्ययन किया है।

उनके अनुसार नए राज्यों की मांग भारतीय राष्ट्रवाद के विरुद्ध नहीं थी, बल्कि यह लोकतांत्रिक व्यवस्था के भीतर क्षेत्रीय आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति थी।

बीपिन चंद्र का मानना था कि यदि क्षेत्रीय और भाषाई मांगों की उपेक्षा की जाती, तो पृथकतावादी आंदोलनों को बढ़ावा मिल सकता था। इसलिए राज्यों का पुनर्गठन और नए राज्यों का निर्माण भारतीय लोकतंत्र की स्थिरता के लिए आवश्यक था।

उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन ने "विविधता में एकता" की भावना को विकसित किया था, जिसके कारण नए राज्यों के निर्माण के बावजूद राष्ट्रीय एकता बनी रही।

6. एम.पी. जैन का संवैधानिक दृष्टिकोण (2016)

एम.पी. जैन ने भारतीय संविधान के संदर्भ में नए राज्यों के निर्माण की संवैधानिक प्रक्रिया का विश्लेषण किया।

उन्होंने संविधान के अनुच्छेद 2 और 3 की व्याख्या करते हुए बताया कि संसद को नए राज्यों के निर्माण, सीमाओं में परिवर्तन तथा राज्यों के नाम बदलने का अधिकार प्राप्त है।

जैन के अनुसार यह प्रावधान भारतीय संघवाद को गतिशील और अनुकूलनशील बनाता है। उन्होंने यह भी कहा कि भारतीय संविधान की यही विशेषता उसे अन्य संघीय व्यवस्थाओं से अलग बनाती है।

7. सुभाष कश्यप का दृष्टिकोण (2014)

सुभाष कश्यप ने भारतीय राजनीति और संविधान के अध्ययन में नए राज्यों की मांग को राष्ट्रीय विकास और प्रशासनिक दक्षता से जोड़कर देखा।

उनके अनुसार छोटे राज्यों में स्थानीय प्रशासन अधिक प्रभावी हो सकता है क्योंकि सरकार जनता की समस्याओं के अधिक निकट होती है।

उन्होंने तेलंगाना आंदोलन का उदाहरण देते हुए बताया कि लंबे समय तक क्षेत्रीय असंतोष को अनदेखा करने से आंदोलन उग्र रूप धारण कर सकते हैं।

कश्यप का मानना है कि नए राज्यों के निर्माण में केवल राजनीतिक दबाव ही नहीं, बल्कि आर्थिक और प्रशासनिक व्यवहार्यता का भी ध्यान रखा जाना चाहिए।

कार्य प्रणाली

यह शोध गुणात्मक एवं वर्णनात्मक पद्धति पर आधारित है।

तथ्य संग्रहण के स्रोत

- पुस्तकें
- शोध पत्र
- सरकारी रिपोर्ट
- समाचार पत्र एवं पत्रिकाएँ
- इंटरनेट स्रोत

शोध का स्वरूप

- ऐतिहासिक
- विश्लेषणात्मक
- तुलनात्मक

नए राज्यों की मांग के प्रमुख कारण

1. प्रशासनिक सुविधा

बड़े राज्यों में प्रशासनिक नियंत्रण कठिन हो जाता है। छोटे राज्यों में शासन अधिक प्रभावी माना जाता है।

2. आर्थिक असमानता

क्षेत्रीय विकास में असंतुलन नए राज्यों की मांग को जन्म देता है।

3. सांस्कृतिक एवं भाषाई पहचान

स्थानीय संस्कृति और भाषा की रक्षा हेतु पृथक राज्य की मांग उठती है।

4. राजनीतिक प्रतिनिधित्व

स्थानीय समुदायों को राजनीतिक भागीदारी बढ़ाने का अवसर मिलता है।

सारणी : भारत में नए राज्यों की मांग और उनके प्रमुख कारण

क्षेत्र	मांग	प्रमुख कारण
विदर्भ	महाराष्ट्र से अलग राज्य	आर्थिक उपेक्षा
गोरखालैंड	पश्चिम बंगाल से अलग राज्य	भाषाई एवं सांस्कृतिक पहचान
बुंदेलखंड	उत्तर प्रदेशध्मध्य प्रदेश विभाजन	पिछड़ापन एवं विकास
हरित प्रदेश	पश्चिमी उत्तर प्रदेश	आर्थिक एवं प्रशासनिक कारण
पूर्वांचल	पूर्वी उत्तर प्रदेश	क्षेत्रीय असमानता

नए राज्यों के निर्माण के उदाहरण

राज्य	गठन वर्ष	प्रमुख कारण
उत्तराखंड	2000	पर्वतीय क्षेत्र की उपेक्षा
झारखंड	2000	जनजातीय पहचान एवं संसाधन
छत्तीसगढ़	2000	प्रशासनिक सुविधा
तेलंगाना	2014	क्षेत्रीय असमानता

परिणाम एवं विवेचना

सकारात्मक प्रभाव

1. प्रशासनिक दक्षता में वृद्धि
2. स्थानीय विकास को बढ़ावा
3. क्षेत्रीय आकांक्षाओं की पूर्ति
4. लोकतांत्रिक भागीदारी में वृद्धि

नकारात्मक प्रभाव

1. क्षेत्रवाद को बढ़ावा
2. संसाधन विवाद
3. प्रशासनिक खर्च में वृद्धि
4. राजनीतिक अस्थिरता

विवेचना

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि नए राज्यों की मांग भारतीय लोकतंत्र की स्वाभाविक प्रक्रिया है। छोटे राज्यों में प्रशासनिक सुविधा और विकास की संभावनाएँ बढ़ती हैं, किंतु केवल छोटे राज्य बना देने से विकास सुनिश्चित नहीं होता। सुशासन, संसाधनों का उचित प्रबंधन और राजनीतिक स्थिरता भी आवश्यक हैं।

निष्कर्ष

भारत में नए राज्यों की मांग क्षेत्रीय आकांक्षाओं, आर्थिक विकास, सांस्कृतिक पहचान और प्रशासनिक सुविधा से जुड़ी हुई है। स्वतंत्रता के बाद भारतीय संघवाद ने समय–समय पर इन मांगों को संवैधानिक और लोकतांत्रिक तरीके से स्वीकार किया है।

नए राज्यों के निर्माण से स्थानीय विकास और प्रशासनिक दक्षता में सुधार की संभावनाएँ बढ़ती हैं, किंतु इसके साथ क्षेत्रवाद और संसाधन विवाद जैसी चुनौतियाँ भी सामने आती हैं। इसलिए नए राज्यों के निर्माण का निर्णय केवल राजनीतिक आधार पर नहीं, बल्कि आर्थिक, प्रशासनिक और राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखकर लिया जाना चाहिए।

अतः यह कहा जा सकता है कि नए राज्यों की मांग भारतीय लोकतंत्र और संघवाद की गतिशीलता का प्रतीक है। भविष्य में भी यह प्रक्रिया जारी रह सकती है, किंतु इसके लिए संतुलित और दूरदर्शी नीति की आवश्यकता होगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Austin, G. (1999). *The Indian Constitution: Cornerstone of a Nation*. New Delhi: Oxford University Press.
2. Brass, P. R. (1991). *Ethnicity and Nationalism: Theory and Comparison*. New Delhi: Sage Publications.
3. Chandra, B. (2009). *India Since Independence*. New Delhi: Penguin Books.
4. Fadia, B. L. (2018). *Indian Government and Politics*. Agra: Sahitya Bhawan.
5. Jain, M. P. (2016). *Indian Constitutional Law*. New Delhi: LexisNexis.
6. Kothari, R. (1988). *Politics in India*. New Delhi: Orient Longman.
7. Kashyap, S. C. (2014). *Our Constitution*. New Delhi: National Book Trust.
8. Singh, M. P., & Saxena, R. (2013). *Indian Politics: Constitutional Foundations and Institutional Functioning*. New Delhi: PHI Learning.
9. Kumar, A. (2010). “Demand for New States in India.” *Indian Journal of Political Science*, 71(3), 845–858.
10. Government of India. (2000). *Report on State Reorganisation and Regional Development*. New Delhi: Government Press.

जलवायु परिवर्तन और पेयजल संकट गोरखपुर के विशेष संदर्भ में

डॉ. अमृता कुमारी*

जल और जलवायु परिवर्तन आपस में गहराई से जुड़े हुए हैं । जलवायु परिवर्तन विश्व के जल को जटिल तरीकों से प्रभावित करता है। बारिश के अनियमित पैटर्न से लेकर बर्फ की चादरों के पिघलने, समुद्र के स्तर में वृद्धि, बाढ़ और सूखे तक जलवायु परिवर्तन के अधिकांश प्रभाव जल से ही संबंधित हैं।[1]

जलवायु परिवर्तन जल की कमी और जल से संबंधित खतरों (जैसे बाढ़ और सूखा) दोनों को बढ़ा रहा है, क्योंकि बढ़ते तापमान वर्षा के पैटर्न और संपूर्ण जल चक्र को बाधित कर रहे हैं।

पानी की कमी

आज विश्वभर में दो अरब से अधिक लोगों को स्वच्छ पेयजल उपलब्ध नहीं है, और विश्व की लगभग आधी आबादी वर्ष के कम से कम कुछ भाग में गंभीर जल संकट का सामना कर रही है। जलवायु परिवर्तन और जनसंख्या वृद्धि के कारण इन आंकड़ों में और वृद्धि होने की आशंका है।[2]

- पृथ्वी पर मौजूद जल का केवल 0.5 प्रतिशत ही उपयोग योग्य और उपलब्ध मीठा जल है दृ और जलवायु परिवर्तन इस आपूर्ति को खतरनाक रूप से प्रभावित कर रहा है। पिछले बीस वर्षों में, मिट्टी की नमी, बर्फ और हिम सहित स्थलीय जल भंडारण में प्रति वर्ष 1 सेंटीमीटर की दर से गिरावट आई है, जिसका जल सुरक्षा पर गंभीर प्रभाव पड़ रहा है।
- मध्य से उच्च अक्षांशों और उच्च पर्वतीय क्षेत्रों में पिघलते ग्लेशियर, बर्फ और पर्माफ्रॉस्ट मनुष्यों और पारिस्थितिक तंत्रों को प्रभावित कर रहे हैं । ये परिवर्तन पहले से ही सिंचाई, जलविद्युत, जल आपूर्ति और बर्फ, हिम और पर्माफ्रॉस्ट पर निर्भर आबादी को प्रभावित कर रहे हैं।
- जलवायु परिवर्तन मीठे पानी के पारिस्थितिक तंत्रों के नुकसान और क्षरण तथा मीठे पानी पर निर्भर कई प्रजातियों की अभूतपूर्व गिरावट और विलुप्ति के प्रमुख कारणों में से एक है , विशेष रूप से भूमि उपयोग और प्रदूषण के कारण।
- वैश्विक तापमान वृद्धि को 2 डिग्री सेल्सियस की तुलना में 1.5 डिग्री सेल्सियस तक सीमित करने से जल संकट से पीड़ित होने वाली विश्व जनसंख्या का अनुपात लगभग आधा हो जाएगा, हालांकि विभिन्न क्षेत्रों में काफी भिन्नता है।
- जलवायु परिवर्तन से जल की गुणवत्ता भी प्रभावित होती है, क्योंकि जल के बढ़ते तापमान और अधिक बार आने वाली बाढ़ और सूखे से तलछट से लेकर रोगजनकों और कीटनाशकों तक, जल प्रदूषण के कई रूपों के और भी गंभीर होने की आशंका है।
- जलवायु परिवर्तन, जनसंख्या वृद्धि और पानी की बढ़ती कमी से खाद्य आपूर्ति पर दबाव पड़ेगा क्योंकि उपयोग किए जाने वाले अधिकांश ताजे पानी का, औसतन लगभग 70 प्रतिशत, कृषि के लिए उपयोग किया जाता है (एक व्यक्ति के दैनिक भोजन के उत्पादन के लिए 2000 से 5000 लीटर पानी की आवश्यकता होती है)।[3]

जल संबंधी खतरे

- जलवायु परिवर्तन ने बाढ़ और सूखे जैसी चरम मौसमी घटनाओं की संभावना और गंभीरता को बढ़ा दिया है ।
- वैश्विक तापमान में वृद्धि से वायुमंडल में नमी धारण करने की क्षमता बढ़ जाती है, जिसके परिणामस्वरूप अधिक तूफान और भारी बारिश होती है, लेकिन विरोधाभासी रूप से भूमि से अधिक पानी के वाष्पीकरण और वैश्विक मौसम पैटर्न में बदलाव के कारण अधिक तीव्र शुष्क अवधि भी आती है।
- विश्वभर के कई क्षेत्रों में वार्षिक औसत वर्षा बढ़ रही है और एक छोटे से क्षेत्र में, विशेष रूप से उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में, यह घट रही है।

* यू0जी0सी0– नेट, भूगोल विभाग, सनराइज विश्वविद्यालय, अलवर

- जलवायु परिवर्तन ने अत्यधिक वर्षा की घटनाओं की संभावना को बढ़ा दिया है और इसके परिणामस्वरूप नदी में आने वाली बाढ़ की आवृत्ति और तीव्रता में भी वृद्धि हुई है।
- जलवायु परिवर्तन ने दुनिया के कई हिस्सों में सूखे की घटनाओं की संभावना या गंभीरता को भी बढ़ा दिया है , जिससे कृषि उपज में कमी, पीने के पानी की कमी, जंगल की आग का खतरा बढ़ना, जानमाल का नुकसान और आर्थिक क्षति हो रही है।
- वैश्विक तापमान में प्रत्येक डिग्री की वृद्धि के साथ सूखे और बाढ़ के खतरे और उनसे जुड़े सामाजिक नुकसान में और अधिक वृद्धि होने का अनुमान है।
- पिछले 50 वर्षों में जल–संबंधी आपदाओं का दबदबा रहा है और प्राकृतिक आपदाओं से संबंधित सभी मौतों में से 70 प्रतिशत इन्हीं आपदाओं के कारण होती हैं।
- वर्ष 2000 से बाढ़ संबंधी आपदाओं में पिछले दो दशकों की तुलना में 134 प्रतिशत की वृद्धि हुई है । बाढ़ से होने वाली अधिकांश मौतें और आर्थिक नुकसान एशिया में दर्ज किए गए। इसी अवधि में सूखे की संख्या और अवधि में भी 29 प्रतिशत की वृद्धि हुई । सूखे से होने वाली अधिकांश मौतें अफ्रीका में हुईं।[4]

गोरखपुर महानगर के लोगों की आधारभूत आवश्यकताएं, शहर के अनेक तंत्र मिलकर प्रदान करते हैं। इन तंत्रों के जुड़ाव से एक जटिल व्यवस्था का निर्माण होता है जिसमें भौतिक संरचना के अतिरिक सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, संस्थागत, आर्थिक, भौगोलिक व जैव पर्यावरणीय पक्ष भी शामिल होते हैं। विभिन्न पक्षों का यह आपसी जुड़ाव व अन्तक्रियाएं लोगों को सामान्य समय तथा बाढ़, जल जमाव जैसी दुरूह स्थितियों में जीवनयापन के रास्ते तलाशने में मदद करती हैं। महानगर में बहुसंख्य आबादी व वास्तविक स्थितियाँ वैसे ही काफी नाजुक व संवेदनशील हैं। जलवायु परिवर्तन जैसे कारक इन्हें और चुनौतीपूर्ण ही बनायेंगे जिनका असर परोक्ष व अपरोक्ष दोनों ही रूप में पड़ेगा।[5]

मध्य गंगा के मैदान में जो शहर तेजी से विकसित हो रहे हैं उनमें गोरखपुर भी एक प्रमुख शहर है। परन्तु दुर्भाग्यवश शहरी तंत्रों के विकास ने अपनी प्रगति के साथ साथ अपनी गति को नहीं बनाये रखा है। वर्तमान में प्राकृतिक, सामाजिक, संस्थागत व आधार भूत तंत्रों को क्षमता को खाँच तान कर बढ़ाया गया है, विशेषकर पानी की आपूर्ति, स्वच्छता व जल निकासी आदि। जिसके फलस्वरूप शहर के बहुत से हिस्सों में मूलभूत तंत्र की क्षमता, जिससे स्थानीय निवासियों खास तौर से गरोच लोगों को रहने और जीने का आधार मिलता हैं. निरन्तर गिरती जा रही है। इस तरह को चुनौतियों, समय समय पर जलवायु परिवर्तन विशेषकर आर्द्रता और तापमान के कारण प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से बहुत ज्यादा बढ़ेगी अथवा परिवर्तित होंगी। जलवायु परिवर्तन के कारण कभी गम कभी उसकी ब जल जमाव, तापमान का बढ़ना ऊर्जा की कमी व पानी को गुणवत्ता आदि में निरंतर गिरावट दर्ज की जा रही है। उल्लेखनीय है कि जीवाणु जनित बीमारियों का फैलाव इत्यादि तो पहले से ही शहर की बड़ी समस्याएं रही हैं। ऐसी समस्याओं में घिरकर एक शहरी गरीब व्यक्ति द्वारा जीविका के लिए मूलभूत आवश्यक सामग्रियों को जुटा पाना मुश्किल हो जाता है। इसके अतिरिक्त जिस तरह से जलवायु परिवर्तन मूलभूत तंत्रों को प्रभावित कर रहा है उससे कुछ नई समस्याओं के उत्पन्न होने की भी संभावना है, जिसकी भविष्यवाणी करना अभी कठिन है।[6]

गोरखपुर में बाढ़, जल जमाव और जल से सम्बन्धित समस्याएं सबसे ज्यादा स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। ऐतिहासिक रूप से 103 जल स्रोत, प्राकृतिक बाढ़ के संरक्षण और जल निकासी हेतु यहाँ मौजूद थे। वर्तमान समय में इनमें से तीन से भी कम जल स्रोत क्रियाशील हैं। इन्हीं कारणों से (शहर में बंधे बनाकर पानी को सीमित क्षेत्र में बांधा गया व तालाबों और नदियों में भरी गाद) शहर का एक बड़ा हिस्सा आज नदी के जल स्तर से नीचे है। इसकी वजह से विभित्र क्षेत्रों में जल जमाव और बाढ़ में वृद्धि हुई है। हाल के वर्षों में गोरखपुर में जल जमाव को समस्या बद से बदतर होती जा रही है। वर्षा में आये परिवर्तन, जल स्रोतों के समाप्त होते जाने व अनियोजित विकास और भूमि के अनाधिकार अतिक्रमण के कारण जल जमाव की समस्या बढ़ी है। हालांकि वर्षा का स्तर नहीं बढ़ा है। इसकी औसत तीव्रता गर्मियों में बढ़ जाती है और इसी वजह से शहर के कुछ इलाकों में साल में छः महीने तक जल जमाव की स्थिति बनी रहती है।[7]

अनियंत्रित अपशिष्ट निष्पादन और निचले क्षेत्रों में गलत तरीके से बनी हुई नालियाँ जल जमाव को और बढ़ा देती हैं और बहुत सी बीमारियों के खतरे बढ़ जाते हैं। इस शहर का पानी बिना निर्वाहक के है, अर्थात् यहाँ पानी को शुद्ध करने की व्यवस्था नहीं है। इस कारण ठोस अपशिष्ट की समस्या, नालियों में गाद

भर जाने की समस्या तथा जल प्रदूषण की समस्या में वृद्धि हुई है। परिणामस्वरूप बीमारियों के संवाहकों में वृद्धि हुई है और जमीन का पानी दूषित हुआ है। मलेरिया और पेचिश तो एतिहासिक रूप से इस क्षेत्र की समस्याएं रही हैं और हाल को वर्षों में डायरिया, हेपेटाइटिस, फतीरीसिस और जापानी इन्सेफलाइटिस जैसी बीमारियों बहती हुई दिखी है।

गोरखपुर की प्रस्तावित सहनक्षमता रणनीति यह मानती है कि जलवायु परिवर्तन के मुद्दे पर संगठित रूप से प्रतिक्रिया करनी होगी। जिसके अन्तर्गत ऐसे संस्थानों, संस्थानिक, व्यवहारिक, सामाजिक और तकनीकी विषयों का समावेश करना होगा, जो कि शहरी आधारभूत व्यवस्थाओं की क्षमता को कम करते हैं। इससे शहर के निवासियों, खास तौर से गरीबों को आवश्यकता पूर्ति में बाधा आती है। गोरखपुर का शहरी तंत्र अपेक्षाकृत जटिल है इस कारण जलवायु परिवर्तन के बहुत से प्रभावों की सटीक भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है।[8]

संयुक्त राष्ट्र संघ ने वैश्विक परिदृश्य में इस समस्या का समाधान बताया है–

- स्वस्थ जलीय पारिस्थितिकी तंत्र और बेहतर जल प्रबंधन से ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम किया जा सकता है और जलवायु संबंधी खतरों से सुरक्षा प्रदान की जा सकती है।
- मैंग्रोव, समुद्री घास, दलदल और कीचड़ वाले क्षेत्र जैसे आर्द्रभूमि अत्यधिक प्रभावी कार्बन सिंक हैं जो CO_2 को अवशोषित और संग्रहित करते हैं, जिससे ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करने में मदद मिलती है।
- आर्द्रभूमि चरम मौसम की घटनाओं से बचाव का काम भी करती है । ये तूफानी लहरों से प्राकृतिक सुरक्षा कवच प्रदान करती हैं और अतिरिक्त जल एवं वर्षा को अवशोषित करती हैं। इनमें पाए जाने वाले पौधों और सूक्ष्मजीवों के माध्यम से आर्द्रभूमि जल भंडारण और शुद्धिकरण का कार्य भी करती हैं।
- बाढ़, सूखा और पानी से संबंधित अन्य खतरों के लिए पूर्व चेतावनी प्रणाली निवेश पर दस गुना से अधिक लाभ प्रदान करती है और आपदा जोखिम को काफी हद तक कम कर सकती है : आने वाले तूफान की 24 घंटे की चेतावनी से होने वाले नुकसान को 30 प्रतिशत तक कम किया जा सकता है।
- जलवायु परिवर्तन का सामना करने में सक्षम जल आपूर्ति और स्वच्छता प्रणालियाँ हर साल 360,000 से अधिक शिशुओं की जान बचा सकती हैं ।
- ड्रिप सिंचाई और पानी का अधिक कुशलता से उपयोग करने के अन्य साधनों का उपयोग करने वाली जलवायु–अनुकूल कृषि, मीठे पानी की आपूर्ति पर मांग को कम करने में मदद कर सकती है।

संदर्भ–

1. संयुक्त राष्ट्रसंघ का प्रतिवेदन, 2019
2. वही
3. वही
4. वही
5. वही
6. गोरखपुर एन्वायरमेंटल एक्शन ग्रुप प्रतिवेदन, 2010
7. वही
8. वही

ଔଷ

चंपारण में नील आन्दोलन का ऐतिहासिक अवलोकन

अजीत कुमार*

1860 ई0 में बंगाल में नील की विरूद्ध हुए सफल विद्रोह के बाद वहाँ की रैयत शोषण के चंगुल से मुक्त हो चुकी थी। 1866 ई0 में चम्पारण को जिला का दरजा मिला और इसके तुरंत बाद 1867 ई0 में नील सम्बन्धी हलचल का आरंभ सर्वप्रथम चम्पारण के सबसे बड़ी नील कोठी लालसरैया क्षेत्र में आरंभ हुई।[1] जेम्स मैक्लिऑड को निलहों का राजा कहा जाता था और उसके अस्तबल में 120 घोड़े थे। मौजा जौकटिया की रैयतों ने नील को छोड़कर दूसरी फसलों की खेती शुरू कर दी। लोभ दिखाने अथवा डराने–धमकाने के प्रभाव में नहीं आकर उलटें रैयतों ने कोठी में आग लगा दी। इसका कोई प्रमाण नहीं मिल पाया कि आग रैयतों ने लगाई है। इसलिए निलहें रैयतों का कुछ नहीं बिगाड़ पाए।[2]

पटना कमिश्नर ने अपने प्रतिवेदन में रैयतों को हो रही कठिनाइयों के बारे में उल्लेख किया। एक समय ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई जिसमें लगने लगा कि चम्पारण में नील की खेती सदा के लिए बन्द हो जाएगी क्योंकि निलहों द्वारा रैयतों के साथ किए गए सट्टों की खासी आलोचना की गई थी। लेकिन इसके बाद निलहों ने सरकार को अपने प्रभाव में ले लिया और मोतिहारी में दो जजों की एक छोटी अदालत स्थापित कर दी गई जिसका मुख्य कार्य यह था कि सट्टों को तोड़ने के क्रम में निलहों को जो घाटा लगेगा, उस हरजाने की वह गणना करे। इस निर्णय से निलहों को मनोवांछित फल मिल गया। जो मामले इस अदालत में जाते थे उसमें निलहों के पक्ष में ही निर्णय लिए जाते थे। सरकार की कार्यवाहियों से हमेशा ही निलहों को ही लाभ मिला।[3]

चम्पारण गजेटियर में उल्लेख किया गया है कि सभी रैयत नील की खेती को नापसंद करती हैं और एक भी ऐसी रैयत न थी जो नील की खेती करना छोड़ना चाहे तो छोड़ न दे। रैयतों की स्थिति को देखते हुए केन्द्र सरकार और प्रान्तीय सरकार ने निलहों पर दबाव देना आरंभ किया और इसके बाद निलहों ने मजदूरी की दर बढ़ा दी और नील खेती की दर साढ़े छह रूपए एकड़ से वृद्धि कर साढ़े नौ रूपए एकड़ कर दिया। 1867 की हलचल के बाद नील की कीमतों में भी थोड़ी वृद्धि कर दी गई परन्तु इस प्रथा के दोषों का निवारण नहीं हो सका।[4] 1871 में चम्पारण में पुनः असंतोष की भावना उभरी। पटना कमिश्नर ने बंगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर को लिखा कि यह एक अनिवारणीय प्रथा है जिसमें नील की खेती के लिए रैयतों की जमीन जबर्दस्ती ली जाती है। 1875 में पटना कमिश्नर ने पुनः प्रस्ताव दिया कि नील सम्बन्धी शिकायतों की जाँच के लिए एक कमीशन की नियुक्ति की जाए परन्तु बंगाल के छोटे लाट रिचर्ड कैम्बेल ने इसे अस्वीकार करते हुए कहा कि इससे अशांति फैलेगी। इसकी आलोचना करते हुए। 1877 ई0 में पटना के कमिश्नर स्टुअर्ड ने लिखा कि कमीशन भले ही नियुक्त नहीं हो लेकिन वहाँ की अशांति को अनदेखी करना ठीक नहीं है।[5] इसके बाद ऐशले इडेन बंगाल के छोटे लाट नियुक्त हुए। बंगाल में नील आंदोलन के समय वे वहाँ के कमिश्नर थे। इसलिए उन्हें नील सम्बन्धी तथ्यों की सूक्ष्म जानकारी थी। उन्होंने चुपचाप निलहों को समझाया कि रैयतों से जबर्दस्ती खेती कराना अनुचित है। निलहों को यह समझ में आ रही थी कि अब सरकार के अधिकारियों के विरूद्ध कुछ भी करना उचित नहीं है। 1878 ई0 में 'बिहार प्लाण्टर्स एसोसिएशन' नामक सभा की स्थापना की गई और इसकी पहली ही बैठक में नील का दाम नौ रूपया से बढ़कर साढ़े उस रूपए प्रति एकड़ कर दिया गया। अन्य निर्णयों में था कि यदि सट्टा में स्पष्ट तौर पर उल्लेख नहीं किया गया हो तो रैयत की रजामंदी के बिना नील की खेती को बदला नहीं जाए और यदि बदलने की स्थिति ही आए तो एक रैयत के खेत से दूसरी रैयत के खेत को नहीं बदला जाए। एसोसिएशन के सदस्यों पर कुछ पाबंदियां लगाई गईं। सरकार के दबाव के साथ यह नियम बनाया गया कि यदि प्रति बीघा तीन कट्ठा की दर से नील की खेती की जाएगी तो रैयत की मालगुजारी में वृद्धि नहीं की जाएगी। सरकार ने यह समझा कि अब अशांति कम हो जाएगी। लेकिन ऐशले इडेन का तर्क था कि जमींदारों द्वारा एक निश्चित राशि लेकर गाँव की मालगुजारी वसूलने का ठोका निलहों को दे दिया जाता है और इस कारण निलहों को इस गाँव में मनमानी करने का एक प्रकार से अधिकार मिल जाता है। लेकिन इडेन की सोच के अनुकूल कोई कार्रवाई नहीं की गई।[6]

* एम0ए0 (इतिहास), इग्नू, यू0जी0सी0 नेट, 2013

इस अवधि में सामाजिक परिवर्तन के कई तत्त्व सक्रिय रूप से उभरकर आए जिनमें शिक्षा का प्रसार, प्रिंटिंग प्रेस और पत्रकारिता का विस्तार, औपनिवेशिक सरकार द्वारा शोषण के विरूद्ध जागृति ग्रामीण इलाकों तक पहुँची। इससे पहले कि औपनिवेशिक सरकार के समक्ष विद्रोह की स्थिति उत्पन्न होती, बंगाल टेनेन्सी ऐक्ट, 1885 पारित किया गया। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में किसानों की समस्याओं पर सरकार का ध्यान शीघ्र आकर्षित हो जाता था। किसान एवं जमींदार के बीच के सम्बन्ध सामान्य रहे, इस ओर सरकार सतर्क रहती थी। परन्तु इस दिशा में भी सरकार कम ही सफल हुई।[7] 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का गठन हुआ और किसानों के बीच भी इस आशा का संचार हुआ कि उनकी समस्याओं पर एक न एक दिन भारत की सबसे बड़ी राजनीतिक संस्था के अंतर्गत विचार–विमर्श होगा।[8]

1887 में चम्पारण में पड़े अकाल के कारण रैयतों को भारी कष्ट हुआ। हालांकि इस समय नील के खेतों का दाम साढ़े दस रूपए से बढ़कर बारह रूपये प्रति एकड़ कर दिया गया परन्तु इससे अशांति कम नहीं हुई। चम्पारण में अशांति की आग धीरे–धीरे फैल ही रही थी और 1907 के तेलहुआ कोठी में आग लगाकर कोठी के अंग्रेज मैनेजर मिस्टर ब्लूम फिल्ड को मार डालने के बाद संघर्ष का दूसरा अध्याय शुरू हुआ।[9]

तिनकठिया एवं शरहवेशी के विरूद्ध रैयतों द्वारा सरकार को बार–बार आवेदन दिया गया। बंगाल सरकार ने 1908 में गोरले को जाँच–अधिकारी नियुक्त किया और वह चम्पारण आकर जाँच किए लेकिन उनका प्रतिवेदन कभी सार्वजनिक नहीं किया गया क्योंकि यह किसानों के पक्ष में और कोठीवालों के विरोध में था। पुनः रैयतों द्वारा आवेदन दिया गया और बाध्य होकर बंगाल की सरकार ने सर एडवर्ड बेकरी की अध्यक्षता में एक कमिटी का गठन किया। इस बीच कोठी और जमींदारों के बीच कुछ बिन्दुओं पर समझौता हुए। 1888 में बेतिया राज के ऊपर कुछ बकाया हो गया जिसे अदा करने के लिए बेतिया राज के मैनेजर ने अंग्रेजी सरकार से 95 लाख रूपए उधार इस शर्त्त पर लिया कि अंग्रेजों के साथ बेतिया राज मुकर्ररी बंदोबस्ती करे और उधार में जो धन लिए गए हैं इसका भुगतान राज की मालगुजारी से किया जाए। साढ़े पाँच लाख रूपए का मुकर्ररी ठेका 14 कोठीवालों के साथ बंदोबस्त किया गया। अब निलहों की स्थिति बहुत मजबूत हो गई। धीरे–धीरे कोठियों की संख्या में बढ़ोतरी ही होती गई और 1917 ई0 में गांधी के आगमन के समय लगभग 70 कोठियाँ यहाँ मौजूद थीं। यहाँ पर जितने हिस्से में नील की खेती होती थी उसमें एक चौथाई भाग में ही जिरात प्रथा थी। बाकी तीन चौथाई भाग में असामीवार प्रथा थी। इस समय नील के कारखानों में 33 हजार मजदूर काम करते थे। जर्मनी ने जब कृत्रिम रंग का आविष्कार कर लिया तो नील के व्यापार में कम लाभ होने लगा और 1905 में नील की खेती का रकबा 47800 एकड़ हो गया जो 1914 में और घट गया। इस वर्ष प्रथम विश्व युद्ध आरंभ होने के कारण जर्मनी से नील का आना बंद हो गया और फिर नील की खेती में बढ़ोतरी होने लगी। 1916 में 21900 एकड़ असामीवार तथा एक तिहाई जिरात की प्रथा पर खेती होती थी।[10]

चंपारण में नील की खेती में नीलहों ने स्थानीय किसानों का शेषण किए, जिसके फलस्वरूप आन्दोलन आरंभ हुए। 1917 में गाँधी ने आकर इसे राष्ट्रव्यापी बना दिया।

संदर्भ

1. डॉ. राजेंद्र प्रसाद, चम्पारण में महात्मा गांधी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, पाँचवाँ संस्करण, 2014
2. डॉ. राजेंद्र प्रसाद, सत्याग्रह इन चम्पारण, नवजीवन, अहमदाबाद
3. वही
4. चम्पारण जिला गजेटियर, बिहार सरकार, 1960
5. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, महात्मा गांधी एंड बिहार, सम रिमिनिसेंसेज, बाम्बे
6. वही
7. विंध्याचल प्रसाद गुप्त, नील के धब्बे, संवाद प्रकाशन, किला मुअल्ला, बेतिया, 1986
8. वही
9. डॉ. राजेंद्र प्रसाद, चम्पारण में महात्मा गांधी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, पाँचवाँ संस्करण, 2014
10. डॉ. के.के. दत्ता बिहार में स्वातंत्र्य आंदोलन का इतिहास, खंड–*I*, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2014

ଔଷ

106वां संविधान संशोधन अधिनियमः लैंगिक समानता की दिशा में एक ऐतिहासिक पहल

लक्ष्मी नारायण*

सारांश

भारतीय लोकतंत्र में महिलाओं की भागीदारी ऐतिहासिक रूप से सीमित रही है, जबकि वे जनसंख्या का लगभग आधा हिस्सा हैं। इस असंतुलन को दूर करने के उद्देश्य से 2023 में पारित 106वां संविधान संशोधन अधिनियम, जिसे "नारी शक्ति वंदन अधिनियम" भी कहा जाता है, एक महत्वपूर्ण पहल के रूप में सामने आया है। यह अधिनियम लोकसभा एवं राज्य विधानसभाओं में महिलाओं के लिए 33% आरक्षण सुनिश्चित करता है। इस शोध पत्र का उद्देश्य इस अधिनियम के सामाजिक, राजनीतिक और लैंगिक प्रभावों का विश्लेषण करना है। अध्ययन में गुणात्मक पद्धति का उपयोग करते हुए विभिन्न शोध-पत्रों, सरकारी रिपोर्टों और नीतिगत दस्तावेजों का विश्लेषण किया गया है। निष्कर्षतः यह पाया गया कि यह अधिनियम महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है, किंतु इसके कार्यान्वयन और सामाजिक संरचनात्मक बाधाएँ इसकी प्रभावशीलता को प्रभावित कर सकती हैं (**कन्नबिरन, 2024; पीआरएस विधायी अनुसंधान, 2023**)।

प्रस्तावना

भारतीय समाज में लैंगिक असमानता एक गहरी जड़ें जमाए हुए सामाजिक समस्या रही है, जिसका प्रभाव महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय संविधान ने समानता के सिद्धांत को अपनाया, किंतु व्यवहारिक स्तर पर महिलाओं का प्रतिनिधित्व संसद और विधानसभाओं में अपेक्षाकृत कम रहा है (**क्रूक, 2010; राय, 2017**)।

महिला आरक्षण का विचार भारत में पहली बार 1990 के दशक में सामने आया, परंतु यह लंबे समय तक राजनीतिक सहमति के अभाव में अधर में लटका रहा। अंततः 2023 में इसे संवैधानिक रूप प्रदान किया गया (**पीआरएस विधायी अनुसंधान, 2023**)।

106वां संविधान संशोधन अधिनियम महिलाओं के लिए 33% आरक्षण प्रदान करता है, जो लोकतंत्र में समावेशिता और प्रतिनिधित्व को सुदृढ़ करने की दिशा में एक ऐतिहासिक कदम है (**विधि और न्याय मंत्रालय, 2023**)।

अध्ययन के उद्देश्य

इस शोध के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. 106वें संविधान संशोधन अधिनियम की प्रमुख विशेषताओं का विश्लेषण करना।
2. महिलाओं के राजनीतिक प्रतिनिधित्व पर इसके प्रभाव का अध्ययन करना।
3. लैंगिक समानता के संदर्भ में इसकी भूमिका का मूल्यांकन करना।
4. अधिनियम से जुड़ी चुनौतियों और सीमाओं का विश्लेषण करना।

परिकल्पना

H1: 106वां संविधान संशोधन अधिनियम महिलाओं के राजनीतिक प्रतिनिधित्व को बढ़ाएगा।

H2: यह अधिनियम लैंगिक समानता को प्रोत्साहित करेगा।

H3: सामाजिक एवं संस्थागत बाधाएँ इसके प्रभाव को सीमित कर सकती हैं।

* अतिथि व्याख्याता, राजनीति विज्ञान, स्व. लाल श्याम शाह शासकीय नवीन महाविद्यालय मोहला छत्तीसगढ़

शोध पद्धति

यह अध्ययन गुणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है, जिसमें द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है।

डेटा स्रोत

- स्कोपस एवं वेब ऑफ साइंस में प्रकाशित शोध पत्र
- SAGE पत्रिकाएँ
- पीआरएस विधायी अनुसंधान विधायी अनुसंधान रिपोर्ट
- PIB एवं सरकारी दस्तावेज

विश्लेषण तकनीक

- विषयवस्तु विश्लेषण
- तुलनात्मक विश्लेषण

यह पद्धति नीति विश्लेषण और सामाजिक प्रभाव को समझने में सहायक है (**ब्रायमैन, 2016)**।

अधिनियम की प्रमुख विशेषताएँ

106वां संविधान संशोधन अधिनियम निम्नलिखित प्रमुख विशेषताओं को समाहित करता है:

1. **33% आरक्षण:** लोकसभा एवं राज्य विधानसभाओं में महिलाओं के लिए आरक्षण (**पीआरएस विधायी अनुसंधान**, **2023**)।
2. **SC/ST महिलाओं के लिए आरक्षण:** आरक्षित वर्गों के भीतर भी महिलाओं को आरक्षण (**विधि और न्याय मंत्रालय**, **2023**)।
3. **परिसीमन के बाद लागू:** यह अधिनियम जनगणना और परिसीमन के पश्चात लागू होगा (**छिब्बर, 2024)**।
4. **समयसीमा:** यह आरक्षण 15 वर्षों के लिए लागू रहेगा (**जाफ्रेलॉट**, **2024**)।

सैद्धांतिक रूपरेखा: नारीवादी सिद्धांत

इस शोध पत्र का विश्लेषण **नारीवादी सिद्धांत** के आधार पर किया गया है, जो समाज में लैंगिक असमानताओं को समझने और उन्हें चुनौती देने का एक प्रमुख दृष्टिकोण है। नारीवादी सिद्धांत यह मानता है कि सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक संरचनाएँ पितृसत्तात्मक व्यवस्था से प्रभावित होती हैं, जिससे महिलाओं को हाशिए पर रखा जाता है (**राय**, 2017)।

- **उदारवादी नारीवाद**

  उदारवादी नारीवाद समान अवसरों और अधिकारों पर बल देता है। यह दृष्टिकोण मानता है कि महिलाओं को शिक्षा, रोजगार और राजनीतिक भागीदारी में समान अवसर मिलने चाहिए (**क्रूक**, 2010)।

  106वां संविधान संशोधन अधिनियम इसी सिद्धांत को मूर्त रूप देता है, क्योंकि यह महिलाओं को राजनीतिक प्रतिनिधित्व में समान अवसर प्रदान करता है। यह अधिनियम संस्थागत बाधाओं को कम करने का प्रयास करता है, जिससे महिलाएँ लोकतांत्रिक प्रक्रिया में सक्रिय भागीदारी कर सकें।

- **समाजवादी/मार्क्सवादी नारीवाद**

  यह दृष्टिकोण लैंगिक असमानता को आर्थिक संरचना और वर्ग विभाजन से जोड़ता है। इसके अनुसार महिलाओं का शोषण केवल पितृसत्ता का परिणाम नहीं है, बल्कि आर्थिक निर्भरता और संसाधनों पर नियंत्रण की कमी से भी जुड़ा है (**ब्रायमैन, 2016**)।

  महिला आरक्षण अधिनियम महिलाओं को सत्ता संरचना में प्रवेश दिलाता है, जिससे वे संसाधनों के वितरण और नीतियों को प्रभावित कर सकती हैं। इससे आर्थिक और सामाजिक सशक्तिकरण को बढ़ावा मिलने की संभावना है।

- **कट्टरपंथी नारीवाद**

  कट्टरपंथी नारीवाद यह मानता है कि पितृसत्ता समाज की मूल संरचना में निहित है और इसे बदलने के लिए संरचनात्मक परिवर्तन आवश्यक हैं (**राय, 2017**)।

  इस संदर्भ में, 106वां संविधान संशोधन अधिनियम केवल प्रतिनिधित्व बढ़ाने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सत्ता संरचना में लैंगिक संतुलन स्थापित करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। हालांकि, यह भी तर्क दिया जाता है कि केवल आरक्षण से पितृसत्तात्मक मानसिकता पूरी तरह समाप्त नहीं होगी।

- **अंतःसंक्रियात्मक नारीवाद**

  अंतःसंक्रियात्मक का सिद्धांत यह बताता है कि महिलाओं के अनुभव केवल लिंग पर आधारित नहीं होते, बल्कि जाति, वर्ग, धर्म और क्षेत्र जैसे अन्य कारकों से भी प्रभावित होते हैं (**क्रेंशॉ, 1989**)।

  106वां संविधान संशोधन अधिनियम में SC/ST महिलाओं के लिए आरक्षण का प्रावधान इस दृष्टिकोण को प्रतिबिंबित करता है, क्योंकि यह बहुस्तरीय असमानताओं को ध्यान में रखता है।

- **सैद्धांतिक विश्लेषण का निष्कर्ष**

  नारीवादी सिद्धांतों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह अधिनियम:

  - उदारवादी नारीवाद के अनुसार समान अवसर प्रदान करता है
  - समाजवादी दृष्टिकोण से शक्ति और संसाधनों के पुनर्वितरण को बढ़ावा देता है
  - कट्टरपंथी दृष्टिकोण से सत्ता संरचना में परिवर्तन की दिशा में कदम है
  - अंतःसंक्रियात्मक दृष्टिकोण से बहुस्तरीय असमानताओं को संबोधित करता है

  इस प्रकार, 106वां संविधान संशोधन अधिनियम केवल एक कानूनी प्रावधान नहीं है, बल्कि यह लैंगिक न्याय और सामाजिक परिवर्तन के व्यापक विमर्श का हिस्सा है (**क्रूक, 2010**; **राय, 2017**; **क्रेंशॉ, 1989**)।

साहित्य समीक्षा

सबसे पहले, **मोना लेना क्रूक** ने अपनी पुस्तक *Quotas for Women in Politics* में यह तर्क दिया कि जेंडर कोटा महिलाओं के राजनीतिक प्रतिनिधित्व को बढ़ाने का एक प्रभावी साधन है। उनके अनुसार, कोटा प्रणाली न केवल महिलाओं की संख्या बढ़ाती है, बल्कि नीति-निर्माण प्रक्रिया में लैंगिक दृष्टिकोण को भी शामिल करती है (**क्रूक, 2010**)। यह अध्ययन वैश्विक स्तर पर विभिन्न देशों में लागू आरक्षण नीतियों के तुलनात्मक विश्लेषण पर आधारित है और यह दर्शाता है कि संस्थागत हस्तक्षेप महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

भारतीय संदर्भ में, **निवेदिता मेनन** ने नारीवादी राजनीति के संदर्भ में यह तर्क दिया है कि केवल कानूनी प्रावधान पर्याप्त नहीं हैं, बल्कि सामाजिक संरचना में परिवर्तन भी आवश्यक है (**मेनन, 2012**)। उनके अनुसार, महिला आरक्षण को केवल प्रतिनिधित्व तक सीमित नहीं रखा जाना चाहिए, बल्कि इसे सशक्तिकरण के व्यापक संदर्भ में देखा जाना चाहिए।

इसी प्रकार, **अमर्त्य सेन** ने अपने *Capability Approach* (क्षमता दृष्टिकोण) के माध्यम से यह स्पष्ट किया कि महिलाओं का सशक्तिकरण केवल राजनीतिक प्रतिनिधित्व से नहीं, बल्कि उनकी क्षमताओं और अवसरों के विस्तार से संभव है (**सेन, 1999**)। यह दृष्टिकोण महिला आरक्षण के प्रभावों को समझने में महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह केवल संख्या बढ़ाने के बजाय गुणवत्ता और प्रभाव पर भी बल देता है।

पंचायती राज संस्थाओं में महिला आरक्षण के प्रभावों पर *एस्थर डुफ्लो और रोहिणी पांडे* द्वारा किया गया अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनके शोध में पाया गया कि महिला नेतृत्व वाले ग्राम पंचायतों में

सार्वजनिक सेवाओं—विशेषकर जल, स्वास्थ्य और शिक्षा—पर अधिक ध्यान दिया गया (**चट्टोपाध्याय एवं डुफ्लो, 2004**)। यह अध्ययन यह सिद्ध करता है कि महिला प्रतिनिधित्व से नीतिगत प्राथमिकताओं में सकारात्मक बदलाव आता है।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर, **ड्रूड डाहलेरुप** ने "क्रिटिकल मास सिद्धांत" प्रस्तुत किया, जिसके अनुसार जब महिलाओं की संख्या एक निश्चित स्तर तक पहुँच जाती है, तब वे प्रभावी रूप से नीति-निर्माण को प्रभावित कर सकती हैं (**डाहलेरुप**, 2006)। यह सिद्धांत 33% आरक्षण की अवधारणा को सैद्धांतिक आधार प्रदान करता है।

इसी संदर्भ में, **पिप्पा नॉरिस** ने यह तर्क दिया कि महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी संस्थागत ढांचे, राजनीतिक संस्कृति और सामाजिक मानदंडों से प्रभावित होती है (**नॉरिस, 2004**)। उनके अनुसार, केवल आरक्षण लागू करना पर्याप्त नहीं है; इसके साथ-साथ सामाजिक स्वीकृति और राजनीतिक प्रशिक्षण भी आवश्यक है।

भारतीय लोकतंत्र में महिलाओं की भागीदारी पर **जोया हसन** ने यह विश्लेषण किया कि महिलाओं का प्रतिनिधित्व बढ़ाने के लिए संरचनात्मक सुधार आवश्यक हैं, लेकिन यह भी ध्यान देना चाहिए कि सामाजिक असमानताएँ—जैसे जाति और वर्ग—महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं (**हसन**, 2010)। यह दृष्टिकोण अंतःसंक्रियात्मकता के सिद्धांत को समर्थन देता है।

हाल के अध्ययनों में, **यूएन वूमेन** (2023) की रिपोर्ट यह दर्शाती है कि जिन देशों में महिला आरक्षण लागू है, वहाँ महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी और नीति-निर्माण में उनकी भूमिका अधिक प्रभावी रही है। उदाहरण के लिए, रवांडा में महिला प्रतिनिधित्व 60% से अधिक है, जो वैश्विक स्तर पर एक उदाहरण प्रस्तुत करता है (**यूएन वूमेन** , 2023)।

भारत में 106वें संविधान संशोधन अधिनियम के संदर्भ में हालिया विश्लेषणों में यह तर्क दिया गया है कि यह अधिनियम महिलाओं के प्रतिनिधित्व को बढ़ाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है, लेकिन इसके प्रभावी कार्यान्वयन के लिए संस्थागत और सामाजिक सुधार आवश्यक हैं (**पीआरएस विधायी अनुसंधान, 2023; जाफ्रेलॉट, 2024**)।

सारांशतः, साहित्य समीक्षा से यह स्पष्ट होता है कि:

- महिला आरक्षण नीतियाँ वैश्विक स्तर पर प्रभावी रही हैं
- भारत में पंचायत स्तर पर इसके सकारात्मक परिणाम पहले ही देखे जा चुके हैं
- केवल आरक्षण पर्याप्त नहीं है; सामाजिक और संरचनात्मक परिवर्तन भी आवश्यक हैं
- अंतःसंक्रियात्मक दृष्टिकोण को शामिल करना आवश्यक है

इस प्रकार, 106वां संविधान संशोधन अधिनियम न केवल एक नीतिगत पहल है, बल्कि यह वैश्विक और राष्ट्रीय स्तर पर विकसित नारीवादी एवं राजनीतिक सिद्धांतों का व्यावहारिक रूप भी है (**क्रूक, 2010; डाहलेरुप, 2006; यूएन वूमेन, 2023**)।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत में महिलाओं के राजनीतिक प्रतिनिधित्व को बढ़ाने की मांग स्वतंत्रता के पश्चात् से ही उठती रही है, किंतु इसे ठोस रूप में लागू करने के प्रयास 1990 के दशक में प्रारंभ हुए। 1992-93 में पारित 73वें और 74वें संविधान संशोधनों के माध्यम से पंचायती राज संस्थाओं और शहरी स्थानीय निकायों में महिलाओं के लिए 33% आरक्षण का प्रावधान किया गया। यह भारत में महिला राजनीतिक सशक्तिकरण की दिशा में पहला महत्वपूर्ण कदम था, जिसने स्थानीय स्तर पर महिलाओं की भागीदारी को उल्लेखनीय रूप से बढ़ाया (**चट्टोपाध्याय एवं डुफ्लो, 2004**)।

राष्ट्रीय स्तर पर महिला आरक्षण का मुद्दा पहली बार 1996 में गंभीरता से सामने आया, जब संसद में महिला आरक्षण विधेयक (81वां संविधान संशोधन विधेयक) प्रस्तुत किया गया। इस विधेयक का उद्देश्य

लोकसभा और राज्य विधानसभाओं में महिलाओं के लिए 33% आरक्षण सुनिश्चित करना था। हालांकि, यह विधेयक विभिन्न राजनीतिक दलों के बीच मतभेदों और सहमति के अभाव के कारण पारित नहीं हो सका (**क्रूक, 2010**)।

इसके पश्चात् 1998, 1999 और 2003 में भी इस विधेयक को पुनः प्रस्तुत किया गया, किंतु हर बार यह राजनीतिक असहमति और सामाजिक-राजनीतिक बहसों के कारण पारित नहीं हो पाया। मुख्य विवादों में अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC) की महिलाओं के लिए अलग आरक्षण की मांग, सीटों के रोटेशन (rotation) का मुद्दा, और पुरुष नेताओं के राजनीतिक हित शामिल थे (**हसन**, 2010)।

एक महत्वपूर्ण प्रगति 2010 में हुई, जब राज्यसभा ने महिला आरक्षण विधेयक को पारित कर दिया। हालांकि, लोकसभा में इसे पारित नहीं किया जा सका और यह विधेयक अंततः निष्क्रिय हो गया (**जाफ्रेलॉट**, 2024)।

लगभग एक दशक के अंतराल के बाद, 2023 में केंद्र सरकार द्वारा पुनः महिला आरक्षण विधेयक प्रस्तुत किया गया, जिसे "नारी शक्ति वंदन अधिनियम" के रूप में जाना जाता है। इस बार इसे व्यापक राजनीतिक समर्थन प्राप्त हुआ और संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित कर दिया गया, जिसके परिणामस्वरूप यह 106वां संविधान संशोधन अधिनियम बना (**विधि और न्याय मंत्रालय, 2023**)।

हालांकि, इस अधिनियम के कार्यान्वयन को जनगणना और परिसीमन प्रक्रिया से जोड़ा गया है, जिससे इसकी तत्काल प्रभावशीलता पर प्रश्न उठते हैं (**पीआरएस विधायी अनुसंधान, 2023**)। फिर भी, यह अधिनियम भारत में महिलाओं के राजनीतिक प्रतिनिधित्व को बढ़ाने की दिशा में एक ऐतिहासिक मील का पत्थर माना जा रहा है।

इस प्रकार, महिला आरक्षण का विकास एक लंबी राजनीतिक और सामाजिक प्रक्रिया का परिणाम है, जिसमें स्थानीय स्तर की सफलताओं, राजनीतिक संघर्षों और बदलते सामाजिक दृष्टिकोणों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है (**क्रूक, 2010; हसन, 2010**)।

परिणाम एवं चर्चा

- **राजनीतिक प्रतिनिधित्व में वृद्धि**

  अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि महिला आरक्षण राजनीतिक प्रतिनिधित्व को बढ़ाने में प्रभावी होता है। विश्व स्तर पर भी यह देखा गया है कि आरक्षण से महिलाओं की भागीदारी में वृद्धि होती है (**क्रूक, 2010**)। भारत में पंचायत स्तर पर यह पहले ही सिद्ध हो चुका है (**चट्टोपाध्याय एवं डुफ्लो, 2004**)।

श्रेणी	**देश/क्षेत्र**	**नीति/आरक्षण का प्रकार**	**प्रमुख निष्कर्ष**	**स्रोत**
राष्ट्रीय (भारत)	भारत (पंचायती राज संस्थाएँ)	73वां एवं 74वां संविधान संशोधन (33% आरक्षण)	महिलाओं की भागीदारी में उल्लेखनीय वृद्धि; शिक्षा, स्वास्थ्य और पेयजल जैसे मुद्दों पर अधिक ध्यान	**चट्टोपाध्याय एवं डुफ्लो (2004)**
राष्ट्रीय (भारत)	भारत (ग्राम पंचायत)	महिला सरपंच आरक्षण	महिला नेतृत्व वाले क्षेत्रों में सार्वजनिक वस्तुओं की आपूर्ति बेहतर पाई गई	**डुफ्लो (2012)**
अंतर्राष्ट्रीय	Rwanda	संवैधानिक आरक्षण (60%+ महिला प्रतिनिधित्व)	विश्व में सबसे अधिक महिला प्रतिनिधित्व; लैंगिक नीतियों में सुधार	**IPU (2023)**

श्रेणी	देश/क्षेत्र	नीति/आरक्षण का प्रकार	प्रमुख निष्कर्ष	स्रोत
अंतर्राष्ट्रीय	Norway	कॉर्पोरेट बोर्ड में जेंडर कोटा (40%)	महिला प्रतिनिधित्व में वृद्धि; निर्णय-निर्माण में विविधता	**तीजन (2012)**
अंतर्राष्ट्रीय	France	जेंडर पैरिटी कानून (Parity Law)	राजनीतिक दलों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ी	**क्रूक** (2010)
अंतर्राष्ट्रीय	Nepal	संविधान में महिला आरक्षण (33%)	संसद और स्थानीय निकायों में महिलाओं की मजबूत उपस्थिति	**यूएन वूमेन** (2023)

लैंगिक समानता की दिशा में प्रभाव

यह अधिनियम लैंगिक समानता को बढ़ावा देता है क्योंकि यह महिलाओं को निर्णय लेने की प्रक्रिया में शामिल करता है। इससे नीतियों में महिलाओं के हितों को अधिक महत्व मिलने की संभावना बढ़ती है (**राय**, **2017**)।

लोकतंत्र का सुदृढ़ीकरण

महिलाओं की भागीदारी से लोकतंत्र अधिक समावेशी बनता है। शोध से यह भी ज्ञात होता है कि महिला नेतृत्व से शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक कल्याण के क्षेत्रों में सकारात्मक प्रभाव पड़ता है (**यूएन वूमेन** (2023)।

सामाजिक परिवर्तन की संभावना

पंचायती राज संस्थाओं में महिला आरक्षण के सकारात्मक प्रभावों ने सामाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन लाया है। इसी प्रकार यह अधिनियम भी समाज में लैंगिक समानता की दिशा में परिवर्तन ला सकता है (**चट्टोपाध्याय एवं डुफ्लो, 2004**)।

चुनौतियाँ

कार्यान्वयन में देरी

यह अधिनियम तत्काल प्रभाव से लागू नहीं होगा, जिससे इसकी प्रभावशीलता प्रभावित हो सकती है (**पीआरएस विधायी अनुसंधान**, **2023**)।

प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व

कुछ विद्वानों का मानना है कि यह केवल प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व बन सकता है यदि महिलाओं को वास्तविक शक्ति न मिले (**क्रूक**, **2010**)।

सामाजिक संरचनात्मक बाधाएँ

पितृसत्तात्मक समाज में महिलाओं को निर्णय लेने में कई बाधाओं का सामना करना पड़ सकता है (**राय**, **2017**)।

समयसीमा की सीमा

15 वर्षों की सीमा पर भी प्रश्न उठाए गए हैं कि क्या यह पर्याप्त समय है (**जाफ्रेलॉट**, 2024)।

निष्कर्ष

106वां संविधान संशोधन अधिनियम भारतीय लोकतंत्र में महिलाओं के सशक्तिकरण की दिशा में एक ऐतिहासिक पहल है। यह अधिनियम न केवल महिलाओं के राजनीतिक प्रतिनिधित्व को बढ़ाएगा बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन की दिशा में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

क्रमांक	**परिकल्पना (Hypothesis)**	**निष्कर्ष (Conclusion)**
1	H1: 106वां संविधान संशोधन अधिनियम महिलाओं के राजनीतिक प्रतिनिधित्व को बढ़ाएगा।	अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि यह अधिनियम महिलाओं के राजनीतिक प्रतिनिधित्व में उल्लेखनीय वृद्धि करने की क्षमता रखता है।
2	H2: यह अधिनियम लैंगिक समानता को प्रोत्साहित करेगा।	प्राप्त विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि यह अधिनियम लैंगिक समानता को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।
3	H3: सामाजिक एवं संस्थागत बाधाएँ इसके प्रभाव को सीमित कर सकती हैं।	अध्ययन यह संकेत देता है कि सामाजिक एवं संस्थागत बाधाएँ इस अधिनियम के पूर्ण प्रभाव को सीमित कर सकती हैं।

हालाँकि, इसके प्रभावी कार्यान्वयन के लिए आवश्यक है कि:

- इसे शीघ्र लागू किया जाए
- महिलाओं को वास्तविक राजनीतिक शक्ति प्रदान की जाए
- सामाजिक जागरूकता को बढ़ावा दिया जाए

अंततः यह कहा जा सकता है कि यह अधिनियम भारत में लैंगिक समानता को सुदृढ़ करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर है (**यूएन वूमेन**, 2023)।

संदर्भग्रंथ सूची

ब्रायमैन, ए. (2016). *सामाजिक अनुसंधान विधियाँ* (5वाँ संस्करण). ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

चट्टोपाध्याय, आर., एवं डुफ्लो, ई. (2004). महिलाओं के रूप में नीति-निर्माता: भारत से साक्ष्य। *इकोनोमेट्रिका, 72*(5), 1409–1443।

छिब्बर, पी. (2024). भारतीय राजनीति में महिलाओं का प्रतिनिधित्व। *सेज जर्नल्स।*

क्रेंशॉ, के. (1989). नस्ल और लिंग के अंतःसंबंध का पुनर्मूल्यांकन। *यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो लीगल फोरम,* 139–167।

डाहलेरुप, डी. (2006). *महिलाएँ, कोटा और राजनीति*। रूटलेज।

हसन, ज़ेड. (2010). *भारत में जेंडर और राजनीति*। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

जाफ्रेलॉट, सी. (2024). *भारत में जेंडर प्रतिनिधित्व*। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

कन्नबिरन, के. (2024). राजनीतिक आरक्षण और लैंगिक न्याय। *सेज जर्नल्स।*

क्रूक, एम. एल. (2010). *राजनीति में महिलाओं के लिए कोटा*। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

मेनन, एन. (2012). *नारीवादी दृष्टिकोण से देखना*। जुबान प्रकाशन।

विधि और न्याय मंत्रालय. (2023). *संविधान (106वां संशोधन) अधिनियम, 2023*। भारत सरकार।

नॉरिस, पी. (2004). *निर्वाचन अभियांत्रिकी*। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

पीआरएस विधायी अनुसंधान. (2023). *महिला आरक्षण विधेयक, 2023*। https://prsindia.org

राय, एस. एम. (2017). *जेंडर और राजनीतिक प्रतिनिधित्व*। पालग्रेव मैकमिलन।

सेन, ए. (1999). *विकास के रूप में स्वतंत्रता*। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

यूएन वूमेन. (2023). *महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी रिपोर्ट*। संयुक्त राष्ट्र।

ఆ

गरीबी उन्मूलन में जीविका परियोजना की भूमिका : एक अध्ययन बिहार के सन्दर्भ में

डॉ. संगीता कुमारी*

शोध सार –

प्रस्तुत शोध आलेख " **गरीबी उन्मूलन में जीविका परियोजना की भूमिका : एक अध्ययन, बिहार के सन्दर्भ में" है I यह** लेख बिहार में जीविका पारीयोजना और गरीबी उन्मूलन की प्रक्रिया का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। बिहार लंबे समय तक गरीबी, बेरोजगारी, जातिगत असमानता और सामाजिक पिछड़ेपन से प्रभावित रहा है। वर्ष 2006 में प्रारंभ की गई जीविका योजना ने स्वयं सहायता समूहों (SHGs) के माध्यम से ग्रामीण गरीब महिलाओं को संगठित कर आर्थिक एवं सामाजिक सशक्तिकरण को बढ़ावा दिया। अध्ययन में विश्व बैंक, बिहार सरकार, NRLM तथा NSSO की रिपोर्टों सहित विभिन्न समाजशास्त्रीय अध्ययनों का उपयोग किया गया है। शोध से स्पष्ट होता है कि इस योजना ने महिलाओं की बैंकिंग सेवाओं तक पहुँच, आय, निर्णय लेने की क्षमता और सामुदायिक भागीदारी में वृद्धि की है। साथ ही स्वास्थ्य, शिक्षा और पोषण के क्षेत्र में भी सकारात्मक प्रभाव दिखाई देता है। हालांकि ऋण जाल, सीमित रोजगार अवसर और सामाजिक असमानता जैसी चुनौतियाँ अब भी मौजूद हैं। अध्ययन के अनुसार जीविका योजना बिहार में महिला सशक्तिकरण और समावेशी ग्रामीण विकास का एक प्रभावी माध्यम बनकर उभरी है।

मुख्य **शब्द:-** जीविका योजना, गरीबी उन्मूलन, बिहार, स्वयं सहायता समूह (SHG), महिला सशक्तिकरण, सामाजिक पूँजी, ग्रामीण विकास, वित्तीय समावेशन,आदि।

प्रस्तावना - भारत में गरीबी केवल आर्थिक अभाव की समस्या नहीं है, बल्कि यह सामाजिक बहिष्करण, जातिगत असमानता, लैंगिक भेदभाव, बेरोजगारी तथा संसाधनों पर असमान नियंत्रण से जुड़ी हुई एक जटिल सामाजिक संरचना है। विशेष रूप से बिहार जैसे राज्य में गरीबी ऐतिहासिक रूप से भूमि असमानता, निम्न औद्योगीकरण, अशिक्षा तथा जातिगत पदानुक्रम से प्रभावित रही है। इसी संदर्भ में बिहार सरकार द्वारा वर्ष 2006 में "बिहार ग्रामीण आजीविका संवर्द्धन सोसाइटी" अर्थात् जीविका योजना की शुरुआत की गई, जिसका उद्देश्य ग्रामीण गरीब महिलाओं को स्वयं सहायता समूहों (SHGs) के माध्यम से संगठित कर सामाजिक एवं आर्थिक रूप से सशक्त बनाना था (दत्ता एवं हॉफमैन, 2015, पृ. 4)।

जीविका योजना केवल एक आर्थिक कार्यक्रम नहीं बल्कि ग्रामीण समाज में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया के रूप में उभरी। समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह योजना महिलाओं में सामूहिक चेतना, सामाजिक सहभागिता तथा आर्थिक आत्मनिर्भरता को बढ़ाने का माध्यम बनी (विश्व बैंक रिपोर्ट, 2020, पृ. 7)। बिहार में यह कार्यक्रम महिलाओं की सार्वजनिक भागीदारी, वित्तीय समावेशन तथा सामुदायिक नेतृत्व क्षमता के विकास का महत्वपूर्ण साधन सिद्ध हुआ।

बिहार में गरीबी की सामाजिक पृष्ठभूमि - बिहार लंबे समय तक भारत के सबसे गरीब राज्यों में शामिल रहा है। नीति आयोग के अनुसार वर्ष 2004-05 में बिहार की गरीबी दर लगभग 54.4 प्रतिशत थी, जबकि राष्ट्रीय औसत 37.2 प्रतिशत था (नीति आयोग रिपोर्ट, 2019, पृ. 12)। ग्रामीण क्षेत्रों में दलितों, महादलितों, पिछड़ी जातियों तथा अल्पसंख्यक समुदायों में गरीबी अधिक गहरी थी।

समाजशास्त्री एम.एन. श्रीनिवास के अनुसार भारतीय ग्रामीण समाज में जाति और आर्थिक स्थिति परस्पर जुड़ी होती हैं, जिसके कारण निम्न जातियों को संसाधनों तक समान पहुँच प्राप्त नहीं हो पाती (श्रीनिवास, 1966, पृ. 83)। बिहार में भूमि सुधार की धीमी प्रक्रिया तथा सीमित औद्योगिक विकास ने गरीबी को स्थायी सामाजिक समस्या बना दिया। यही कारण था कि जीविका योजना ने सामाजिक समावेशन को अपनी प्राथमिकता बनाया।

जीविका योजना की उत्पत्ति और उद्देश्य - जीविका योजना का शुभारंभ 2 अक्टूबर 2006 को बिहार सरकार एवं विश्व बैंक की संयुक्त पहल के रूप में हुआ। इसका उद्देश्य गरीब ग्रामीण महिलाओं को संगठित कर उन्हें वित्तीय सेवाओं, प्रशिक्षण तथा आजीविका अवसरों से जोड़ना था (बिहार सरकार, 2024, पृ. 15)। योजना का मुख्य आधार स्वयं सहायता समूह मॉडल था। प्रत्येक समूह में 10 से 15 महिलाएँ शामिल की गईं, जो नियमित बचत और सामूहिक निर्णय प्रक्रिया के माध्यम से आर्थिक गतिविधियाँ संचालित करती हैं। रॉबर्ट पुटनम के सामाजिक पूँजी सिद्धांत के अनुसार सामुदायिक नेटवर्क सामाजिक विकास को गति प्रदान करते हैं (पुटनम, 1993, पृ. 35)। जीविका ने इसी सिद्धांत को व्यवहार में लागू किया।

* समाजशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया, बिहार

जीविका योजना के प्रमुख उद्देश्यों में ग्रामीण गरीब महिलाओं को संगठित कर उन्हें सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षिक रूप से सशक्त बनाना प्रमुख था। इस योजना का पहला उद्देश्य ग्रामीण गरीब महिलाओं का संगठन निर्माण करना था, ताकि वे स्वयं सहायता समूहों (Self Help Groups) के माध्यम से सामूहिक रूप से अपनी समस्याओं को समझ सकें और उनके समाधान के लिए कार्य कर सकें। दूसरा महत्वपूर्ण उद्देश्य वित्तीय समावेशन को बढ़ावा देना था, क्योंकि बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों में बड़ी संख्या में महिलाएँ औपचारिक बैंकिंग प्रणाली से बाहर थीं। जीविका ने महिलाओं को बैंक खाते, बचत, ऋण तथा बीमा जैसी वित्तीय सेवाओं से जोड़ने का कार्य किया (बिहार सरकार, 2024, पृ. 18)।

इसके अतिरिक्त योजना का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य स्वरोजगार एवं आजीविका विकास को प्रोत्साहित करना था। इसके अंतर्गत महिलाओं को पशुपालन, डेयरी, कृषि, लघु उद्योग, हस्तशिल्प तथा सूक्ष्म उद्यमों से जोड़कर आय के नए अवसर प्रदान किए गए। जीविका योजना ने महिला सशक्तिकरण को भी विशेष महत्व दिया, क्योंकि ग्रामीण समाज में महिलाओं की सामाजिक स्थिति लंबे समय तक कमजोर रही थी। समूह बैठकों तथा प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से महिलाओं में आत्मविश्वास, नेतृत्व क्षमता और निर्णय लेने की योग्यता का विकास हुआ (दत्ता एवं हॉफमैन, 2015, पृ. 10)।

योजना का एक अन्य महत्वपूर्ण उद्देश्य स्वास्थ्य एवं पोषण सुधार था। जीविका समूहों के माध्यम से महिलाओं को मातृ स्वास्थ्य, बच्चों के टीकाकरण, स्वच्छता, पोषण तथा परिवार कल्याण संबंधी जानकारी दी गई, जिससे ग्रामीण परिवारों के स्वास्थ्य स्तर में सुधार हुआ। इसके साथ ही सामाजिक जागरूकता का विकास भी योजना का केंद्रीय उद्देश्य था। जीविका ने महिलाओं को बाल विवाह, दहेज प्रथा, घरेलू हिंसा, लैंगिक भेदभाव तथा शिक्षा जैसे सामाजिक मुद्दों पर जागरूक किया, जिससे ग्रामीण समाज में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को गति मिली (विश्व बैंक, 2020, पृ. 13)। इस प्रकार जीविका योजना केवल आर्थिक सहायता कार्यक्रम नहीं रही, बल्कि यह ग्रामीण महिलाओं के समग्र सामाजिक विकास और सामुदायिक परिवर्तन का एक व्यापक आंदोलन बन गई।

विश्व बैंक के अनुसार वर्ष 2020 तक जीविका योजना से 1.2 करोड़ से अधिक महिलाएँ जुड़ चुकी थीं तथा लगभग 10 लाख स्वयं सहायता समूहों का गठन किया जा चुका था (विश्व बैंक, 2020, पृ. 11)। यह विश्व के सबसे बड़े महिला आधारित गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों में से एक माना जाता है। योजना का विस्तार बिहार के लगभग सभी जिलों और अधिकांश ग्रामीण पंचायतों तक हो चुका था। जीविका के अंतर्गत गठित स्वयं सहायता समूहों ने न केवल महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाया, बल्कि उनमें सामाजिक आत्मविश्वास और सामुदायिक भागीदारी की भावना भी विकसित की। इन समूहों के माध्यम से महिलाएँ नियमित बैठकों में भाग लेकर बचत, ऋण वितरण, रोजगार, स्वास्थ्य तथा शिक्षा जैसे मुद्दों पर सामूहिक निर्णय लेने लगीं। इससे ग्रामीण समाज में महिलाओं की सार्वजनिक उपस्थिति और सामाजिक सम्मान में वृद्धि हुई (पालायी एवं कुमार, 2018, पृ. 25)।

जीविका योजना के विस्तार का एक महत्वपूर्ण पहलू यह भी था कि इसने समाज के कमजोर वर्गों—विशेष रूप से अनुसूचित जाति, महादलित, पिछड़े वर्ग और अल्पसंख्यक समुदाय की महिलाओं—को विकास प्रक्रिया से जोड़ने का प्रयास किया। योजना के अंतर्गत महिलाओं को कौशल विकास प्रशिक्षण, डिजिटल साक्षरता, कृषि आधारित गतिविधियों तथा सूक्ष्म उद्यमों से जोड़ा गया, जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था में नई गतिशीलता आई। समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखा जाए तो जीविका योजना ने ग्रामीण महिलाओं में सामूहिक चेतना, सामाजिक सहयोग और आत्मनिर्भरता की भावना को मजबूत किया, जो गरीबी उन्मूलन की प्रक्रिया में अत्यंत महत्वपूर्ण तत्व हैं। जीविका का विस्तार केवल आर्थिक गतिविधियों तक सीमित नहीं रहा बल्कि इसने ग्रामीण महिलाओं में सामाजिक आत्मविश्वास भी बढ़ाया। समूह बैठकों के माध्यम से महिलाओं ने पंचायत, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा घरेलू हिंसा जैसे मुद्दों पर सामूहिक चर्चा शुरू की (दत्ता एवं हॉफमैन, 2015, पृ. 9)।

महिला सशक्तिकरण और जीविका - जीविका योजना का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तिकरण पर पड़ा। बिहार के ग्रामीण समाज में पहले महिलाएँ आर्थिक निर्णयों और सार्वजनिक गतिविधियों में बहुत कम भाग लेती थीं। वे मुख्यतः घरेलू कार्यों तक सीमित रहती थीं तथा बैंकिंग और वित्तीय सेवाओं से भी दूर थीं। किंतु जीविका के स्वयं सहायता समूहों (SHGs) ने महिलाओं को एक सामूहिक मंच प्रदान किया, जहाँ वे नियमित बैठकों में भाग लेकर बचत, ऋण, रोजगार तथा सामाजिक मुद्दों पर चर्चा करने लगीं। इससे महिलाओं में आत्मविश्वास और सामाजिक सक्रियता बढ़ी (विश्व बैंक, 2020, पृ. 16)।

जीविका समूहों के माध्यम से महिलाओं को बैंकिंग, बचत और ऋण प्रबंधन का प्रशिक्षण मिला, जिससे उनकी आर्थिक आत्मनिर्भरता बढ़ी। अनेक महिलाएँ पहली बार अपने नाम से बैंक खाते संचालित करने लगीं और स्वरोजगार गतिविधियों से जुड़कर परिवार की आय में योगदान देने लगीं (दत्ता एवं हॉफमैन, 2015, पृ. 12)।

वित्तीय समावेशन और गरीबी उन्मूलन - जीविका योजना से पहले ग्रामीण गरीब साहूकारों पर निर्भर रहते थे, जो अत्यधिक ब्याज दर पर ऋण देते थे। SHG मॉडल ने गरीब परिवारों को बैंकिंग प्रणाली से जोड़कर कम ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध कराया (दत्ता एवं हॉफमैन, 2015, पृ. 12)।

इस योजना के माध्यम से महिलाओं ने डेयरी, पशुपालन, हस्तशिल्प, कृषि तथा लघु उद्योगों में निवेश किया। इससे परिवारों की आय में वृद्धि हुई तथा उपभोग स्तर बेहतर हुआ। महिलाओं की आर्थिक भागीदारी बढ़ने से परिवारों की बचत क्षमता में भी वृद्धि हुई। कई ग्रामीण परिवारों ने पहली बार नियमित बैंक खाते, बीमा तथा सामूहिक बचत योजनाओं से जुड़ाव स्थापित किया। जीविका समूहों के माध्यम से महिलाओं को वित्तीय प्रबंधन, उद्यमिता तथा बाजार से जुड़ी जानकारी भी प्राप्त हुई। इसके परिणामस्वरूप ग्रामीण अर्थव्यवस्था में आत्मनिर्भरता, रोजगार सृजन तथा सामाजिक सुरक्षा की भावना मजबूत हुई।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह परिवर्तन ग्रामीण शक्ति संरचना में बदलाव को दर्शाता है। पहले आर्थिक नियंत्रण स्थानीय महाजनों के हाथ में था, किंतु SHG मॉडल ने सामुदायिक वित्तीय लोकतंत्रीकरण को बढ़ावा दिया।

स्वास्थ्य, पोषण और सामाजिक चेतना - जीविका योजना ने स्वास्थ्य एवं पोषण के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। SHG बैठकों के माध्यम से महिलाओं को टीकाकरण, मातृ स्वास्थ्य, पोषण तथा स्वच्छता संबंधी जानकारी दी गई (फ्रंटियर्स इन पब्लिक हेल्थ, 2024, पृ. 5)। जीविका दीदियों और सामुदायिक कार्यकर्ताओं के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य जागरूकता अभियान चलाए गए, जिनसे महिलाओं को गर्भावस्था देखभाल, आयरन की गोलियों के सेवन, बच्चों के पोषण तथा स्वच्छ पेयजल के महत्व के बारे में जानकारी मिली। इससे महिलाओं में स्वास्थ्य सेवाओं के प्रति विश्वास बढ़ा और सरकारी स्वास्थ्य केंद्रों तक उनकी पहुँच में सुधार हुआ।

ग्रामीण महिलाओं में स्वास्थ्य जागरूकता बढ़ने से बाल एवं मातृ मृत्यु दर में कमी आई। इससे सामाजिक विकास के अन्य संकेतकों पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ा। जीविका समूहों के माध्यम से महिलाओं ने स्वच्छता, शौचालय उपयोग और संतुलित आहार जैसे विषयों पर भी सामूहिक चर्चा शुरू की, जिससे ग्रामीण परिवारों के जीवन स्तर में सुधार हुआ। बच्चों में कुपोषण की समस्या को कम करने तथा गर्भवती महिलाओं की नियमित स्वास्थ्य जांच सुनिश्चित करने में भी इस योजना की महत्वपूर्ण भूमिका रही। समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखा जाए तो स्वास्थ्य जागरूकता ने महिलाओं को केवल शारीरिक रूप से ही नहीं, बल्कि सामाजिक रूप से भी अधिक सशक्त और जागरूक बनाया।

सामाजिक परिवर्तन और जाति व्यवस्था - बिहार का ग्रामीण समाज जातिगत विभाजन से गहराई से प्रभावित रहा है। लंबे समय तक सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संसाधनों पर उच्च जातियों का प्रभुत्व बना रहा, जबकि दलित, महादलित और पिछड़े वर्ग सामाजिक बहिष्करण तथा आर्थिक वंचना का सामना करते रहे। जीविका योजना ने विभिन्न जातियों की महिलाओं को एक मंच पर लाकर सामाजिक दूरी कम करने का प्रयास किया (बिहार सरकार रिपोर्ट, 2024, पृ. 28)। स्वयं सहायता समूहों में अलग-अलग जातियों की महिलाओं ने साथ बैठकर बचत, ऋण, स्वास्थ्य और सामाजिक मुद्दों पर चर्चा की, जिससे आपसी संवाद और सहयोग की भावना विकसित हुई।

दुर्खीम के अनुसार सामूहिक सहभागिता सामाजिक एकता को मजबूत करती है (दुर्खीम, 1912, पृ. 51)। SHG बैठकों ने महिलाओं में सामुदायिक एकजुटता विकसित की तथा जातिगत भेदभाव को चुनौती दी। पहले जिन महिलाओं के बीच सामाजिक दूरी थी, वे अब समूह गतिविधियों में मिलकर कार्य करने लगीं। इससे ग्रामीण समाज में सामाजिक संबंधों का दायरा विस्तृत हुआ और सहयोग की नई संस्कृति विकसित हुई।

जीविका योजना ने विशेष रूप से अनुसूचित जाति, महादलित और कमजोर वर्गों की महिलाओं को सामाजिक मुख्यधारा से जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। समूह बैठकों में सभी सदस्यों को समान अवसर मिलने से महिलाओं में आत्मसम्मान और सामाजिक पहचान की भावना मजबूत हुई। कई क्षेत्रों में समूहों ने बाल विवाह, शराबबंदी, घरेलू हिंसा और दहेज जैसी सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध सामूहिक अभियान भी चलाए। इससे यह स्पष्ट होता है कि जीविका योजना केवल आर्थिक कार्यक्रम नहीं रही, बल्कि इसने ग्रामीण समाज में सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक समावेशन की प्रक्रिया को भी मजबूत किया।

जीविका योजना की चुनौतियाँ - यद्यपि जीविका योजना ने व्यापक सफलता प्राप्त की, फिर भी अनेक चुनौतियाँ मौजूद हैं। पहली चुनौती माइक्रोफाइनेंस ऋण के अत्यधिक विस्तार से जुड़ी है। कई क्षेत्रों में महिलाएँ बहु-ऋणग्रस्त हो गईं, जिससे ऋण जाल की स्थिति उत्पन्न हुई (रिसर्चगेट अध्ययन, 2020, पृ. 31)। कुछ मामलों में महिलाएँ पुराने ऋण चुकाने के लिए नए ऋण लेने लगीं, जिससे आर्थिक दबाव और बढ़ गया। इससे परिवारों की वित्तीय स्थिरता प्रभावित हुई तथा कई समूहों में ऋण वापसी की समस्या भी सामने आई।

दूसरी चुनौती स्थायी रोजगार अवसरों की कमी है। बिहार से श्रम प्रवास आज भी व्यापक है, जो यह दर्शाता है कि ग्रामीण रोजगार सृजन अभी सीमित है (विश्व बैंक रिपोर्ट, 2020, पृ. 18)। जीविका के माध्यम से महिलाओं को स्वरोजगार से जोड़ा गया, लेकिन बड़े स्तर पर बाजार, तकनीक और प्रशिक्षण की कमी के कारण कई उद्यम लंबे समय तक सफल नहीं रह सके। ग्रामीण क्षेत्रों में औद्योगिक विकास की धीमी गति भी आजीविका के स्थायी अवसरों को सीमित करती है।

तीसरी चुनौती पितृसत्तात्मक नियंत्रण है। अनेक मामलों में महिलाओं के बैंक खाते और ऋण पर पुरुष सदस्यों का नियंत्रण बना रहा, जिससे वास्तविक महिला स्वायत्तता सीमित हो गई (पालायी एवं कुमार, 2018, पृ. 27)। कई परिवारों में महिलाएँ केवल औपचारिक सदस्य बनकर रह गईं, जबकि आर्थिक निर्णय पुरुष ही लेते रहे। इसके अतिरिक्त ग्रामीण समाज में जातिगत भेदभाव, अशिक्षा और सामाजिक रूढ़ियाँ भी महिलाओं की पूर्ण भागीदारी में बाधा उत्पन्न करती हैं। कुछ क्षेत्रों में समूह बैठकों में नियमित उपस्थिति और सामुदायिक सहभागिता बनाए रखना भी चुनौतीपूर्ण रहा। इस प्रकार, जीविका योजना ने सकारात्मक परिवर्तन अवश्य किए हैं, किंतु इसके प्रभाव को और अधिक स्थायी तथा व्यापक बनाने के लिए सामाजिक और संरचनात्मक समस्याओं पर निरंतर कार्य करने की आवश्यकता है।

भारत में SHG मॉडल और बिहार

राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM) के तहत SHG मॉडल को पूरे भारत में लागू किया गया। बिहार का जीविका मॉडल अन्य राज्यों के लिए प्रेरणा बना।

निष्कर्ष - जीविका योजना बिहार में गरीबी उन्मूलन और महिला सशक्तिकरण की दिशा में एक ऐतिहासिक पहल सिद्ध हुई है। इस योजना ने ग्रामीण महिलाओं को आर्थिक संसाधनों, बैंकिंग सेवाओं, बचत समूहों तथा सामाजिक नेतृत्व से जोड़कर उनके जीवन में व्यापक परिवर्तन लाने का कार्य किया। जीविका के माध्यम से लाखों महिलाओं को स्वरोजगार, वित्तीय सहायता तथा सामुदायिक संगठन का अवसर प्राप्त हुआ, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ और सामाजिक आत्मविश्वास भी बढ़ा। समाजशास्त्रीय दृष्टि से जीविका ने ग्रामीण समाज में शक्ति संरचना, लैंगिक संबंधों तथा सामुदायिक सहभागिता में महत्वपूर्ण परिवर्तन उत्पन्न किया है (दत्ता एवं हॉफमैन, 2015, पृ. 15)। अब महिलाएँ केवल घरेलू कार्यों तक सीमित न रहकर पंचायत, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा स्थानीय विकास गतिविधियों में भी सक्रिय भूमिका निभाने लगी हैं।

इसके अतिरिक्त जीविका योजना ने ग्रामीण समाज में सामूहिक चेतना और सामाजिक सहयोग की भावना को मजबूत किया। स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से महिलाओं ने बचत, ऋण प्रबंधन, स्वास्थ्य, पोषण और शिक्षा जैसे मुद्दों पर सामूहिक रूप से कार्य करना शुरू किया। इससे महिलाओं में नेतृत्व क्षमता, आत्मनिर्भरता तथा सामाजिक जागरूकता का विकास हुआ। विशेष रूप से अनुसूचित जाति, महादलित तथा कमजोर वर्गों की महिलाओं को इस योजना से सामाजिक और आर्थिक मुख्यधारा में आने का अवसर मिला। आज भी ऋण जाल, बेरोजगारी, प्रवास तथा बाज़ार तक सीमित पहुँच जैसी चुनौतियाँ अभी भी बनी हुई हैं। कई क्षेत्रों में महिलाओं के उद्यमों को पर्याप्त बाजार और तकनीकी सहायता नहीं मिल पाती, जिसके कारण उनकी आय सीमित रह जाती है। साथ ही, पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना के कारण अनेक महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो सकी है। इसलिए आवश्यक है कि जीविका को केवल माइक्रोफाइनेंस कार्यक्रम न मानकर ग्रामीण सामाजिक परिवर्तन आंदोलन के रूप में विकसित किया जाए। इसके लिए कौशल विकास, बाजार संपर्क, डिजिटल साक्षरता तथा सामाजिक जागरूकता कार्यक्रमों को और मजबूत करने की आवश्यकता है, ताकि यह योजना ग्रामीण विकास और सामाजिक न्याय की दिशा में और अधिक प्रभावी भूमिका निभा सके।

संदर्भ सूची

1. देसाई, ए.आर. **रूरल सोशियोलॉजी इन इंडिया**। बॉम्बे: पॉपुलर प्रकाशन, 1974।
2. दत्ता, यू., हॉफमैन, वी., राव, वी. "जीविका के सामाजिक-आर्थिक प्रभाव", **वर्ल्ड डेवलपमेंट**, खंड 68, 2015।
3. दुर्खीम, एमिल। *द* **एलीमेंट्री फॉर्म्स ऑफ रिलिजियस लाइफ**, 1912।
4. कबीर, नैला। **जेंडर इक्वालिटी एंड वीमेन एम्पावरमेंट**, 2005।
5. मार्क्स, कार्ल। *कैपिटल*, खंड–I, 1867।
6. पुटनम, रॉबर्ट। *मेकिंग डेमोक्रेसी वर्क*, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1993।
7. योजना आयोग रिपोर्ट, भारत सरकार, 2013।
8. थोराट, सुखदेव एवं न्यूमैन, कैथरीन। *ब्लॉक्ड बाय कास्ट*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2010।
9. वाल्बी, सिल्विया। **थ्योराइजिंग पैट्रिआर्की**, 1990।
10. विश्व बैंक रिपोर्ट, **बिहार रूरल लाइवलीहुड प्रोजेक्ट** *(जीविका)*, 2020।

उत्कले साहित्यपरम्परा

राजलक्ष्मी वेहेरा*

शोधसारः

प्रस्तुतः शोधलेखः "उत्कले साहित्यपरम्परा" इति विषयम् आधारीकृत्य लिखितः अस्ति । अस्मिन् लेखे उत्कलप्रदेशस्य संस्कृतसाहित्ये योगदानम् विस्तरेण निरूपितम् । प्राचीनकालात् आरभ्य आधुनिककालपर्यन्तं उत्कलभूमौ अनेकाः कवयः, आचार्याः, आलङ्कारिकाः, नाटककाराः, टीकाकाराश्च अभवन्, येषां रचनाभिः संस्कृतवाङ्मयस्य समृद्धिः अभवत् ।

विश्वनाथकविराजः, जयदेवः, श्रीधरस्वामी, कृष्णमिश्रः, नारायणसत्कविः, मुरारिमिश्रः, चण्डीदासः, सूर्यमणिरथः, ब्रजसुन्दरमिश्रः इत्यादीनां विदुषां जीवनं साहित्यसेवा च अस्मिन् शोधे वर्णिता । तेषां कृतिषु काव्यसौन्दर्यम्, भक्तिरसः, आलङ्कारिकवैशिष्ट्यम्, दार्शनिकभावना, सांस्कृतिकचेतना च सम्यक् दृश्यते ।

अयं शोधः दर्शयति यत् उत्कलस्य संस्कृतसाहित्यपरम्परा भारतीयसंस्कृतेः अमूल्यः निधिः अस्ति । अतः अस्याः परम्परायाः संरक्षणम्, अध्ययनम्, प्रचारश्च अत्यावश्यकः इति निष्कर्षः प्रतिपादितः ।

मुख्यशब्दाः उत्कलसाहित्यपरम्परा, संस्कृतसाहित्यं, विश्वनाथकविराजः, कविजयदेवः, गीतगोविन्दम्, साहित्यदर्पणः, ओडिशादेशः, संस्कृतवाङ्मयम्, आलङ्कारशास्त्रम्, महाकाव्यम्, संस्कृतकवयः, भारतीयसंस्कृतिः, भक्तिकाव्यम्, संस्कृतविद्वांसः, उत्कलीयसाहित्यकाराः ।

❖ उत्कले साहित्यपरम्परा

भारतम् आदिकालादेव साहित्यसंस्कृतेः पुण्यभूमिरूपेण प्रसिद्धम् अस्ति । अस्मिन् देशे कालिदासः, भारविः, माघः, दण्डी तथा बाणभट्टः इत्यादयः महाकवयः स्वकीयप्रतिभया संस्कृतसाहित्यं समलङ्कृतवन्तः । तेषां काव्येषु रसवैचित्र्यम्, अलङ्कारसौन्दर्यम्, भावगाम्भीर्यं च सम्यक् परिलक्ष्यते । एषा साहित्यपरम्परा केवलं भारतस्य अन्येषु प्रदेशेषु एव न, अपितु उत्कलप्रदेशे अपि गाढं प्रभावं स्थापितवती ।

उत्कलभूमिः प्राचीनकालादेव विद्यानां संस्कृतेः च केन्द्ररूपेण विख्याता आसीत् । अत्र बहवः कवयः, आचार्याः, साहित्यकाराश्च अभवन्, ये संस्कृतसाहित्यस्य विकासे महत्त्वपूर्णं योगदानम् अददुः । उत्कले विकसितासाहित्यपरम्परा भारतीयसाहित्यस्य गौरवमय्याः परम्परायाः अविभाज्योऽंशः अस्ति ।

विश्वनाथकविराजः

विश्वनाथकविराजः ओडिशादेशस्य विशिष्टः आलङ्कारिकः कविश्च आसीत् । सः गङ्गवंशीयराज्ञः निःशङ्कभानुदेवस्य सभाकविः आसीत् । तस्य राज्यकालः 1407-1434 ख्रीष्टाब्दपर्यन्तम् आसीत् । अस्मिन्नेव काले विश्वनाथकविराजेन स्वग्रन्थाः विरचिताः इति ज्ञायते । सः स्वस्य अप्रतिमप्रतिभाबलेन अनेकान् ग्रन्थान् रचितवान् । "साहित्यार्णवकर्णधार", "कविसूक्तिरत्नाकर", "अष्टादशविद्यावारविलासिनीभुजङ्ग" इत्यादिभिः उपाधिभिः भूषितः आसीत् । तस्य ग्रन्थेषु "साहित्यदर्पणः" सर्वश्रेष्ठा कृतिः अस्ति । अयं ग्रन्थः समग्रभारते विशिष्टः आलङ्कारग्रन्थः इति अद्यापि परिगण्यते । सर्वाणि साहित्यतत्त्वानि ज्ञातुमस्य ग्रन्थस्य अध्ययनम् अत्यावश्यकम् इति सः स्वयमेव उक्तवान् यथा -

"साहित्यदर्पणममुं सुधियो विलोक्य ।
साहित्यतत्त्वमखिलं सुखमेव विदुः ॥"[1]

तस्य अन्येषु ग्रन्थेषु राघवविलासमहाकाव्यम्, प्रभावतीपरिणयः, कुवलयाश्वचरितम्, चन्द्रकलानाटिका, नरसिंहविजयः, प्रशस्तिरत्नावली, राघवविलापः, कंसवधकाव्यम्, लक्ष्मीस्तवः, काव्यप्रकाशदर्पणः इत्यादयः प्रमुखाः ।

कविराज-अनन्तदासः

अनन्तदासः विश्वनाथकविराजस्य पुत्रः आसीत् । सः साहित्यदर्पणस्य उपरि "लोचन" नाम्नीं उपादेयां टीकां प्रथमं रचितवान् ।

* Lecturer in Maharishi College of Natural Law, Department of Sanskrit, Saheed Nagar, Bhubaneswar
Email ID- beherarajalaxmi246@gmail.com

[1] संस्कृतसाहित्यस्येतिहासः-710, 711

श्रीधरस्वामी

श्रीधरस्वामी ओडिशादेशस्य असाधारणप्रतिभासम्पन्नः विद्वान् आसीत् । सः पुरीस्थे गोवर्धनपीठे मठाधीशः आसीत् । तस्य प्रसिद्धग्रन्थेषु भगवद्गीतायाः उपरि "सुबोधिनी"-टीका, "गीतासारः", भागवतस्य उपरि "भावार्थदीपिका"-टीका, विष्णुपुराणस्य उपरि "आत्मप्रकाश"-टीका, "देवस्तुतिटीका", "व्रजविहारः" इत्यादयः ग्रन्थाः प्रसिद्धाः ।

गजपति-कपिलेन्द्रदेवः

गजपति-कपिलेन्द्रदेवस्य शासनकालः 1435-1466 खीष्टाब्दपर्यन्तम् आसीत् । सः सूर्यवंशस्य प्रतिष्ठाता आसीत् । स्वबाहुबलात् सः अनेकानि राज्यानि विजित्य "गौडेश्वर-नवकोटि-कर्णाटोत्कल-वर्गेश्वर" इति उपाधिना विभूषितः आसीत् । तेन "परशुरामविजयः" नामकं नाटकं विरचितम् इति प्रमाणं लभ्यते ।

गजपति-पुरुषोत्तमदेवः

पुरुषोत्तमदेवः कपिलेन्द्रदेवस्य सुयोग्यः पुत्रः आसीत् । तेन "मुक्तिचिन्तामणिः", "गोपानार्चनपूजाविधिः", "भुवनेश्वरीपूजापल्लवः", "नाममालिका", "जानकीप्रमोदः", "कुवलयाश्वचरितम्", "अभिनववेणीसंहारः", "आनन्दविलासः", "अभिनवगीतगोविन्दम्" इत्यादयः ग्रन्थाः विरचिताः ।

कृष्णमिश्रः

कृष्णमिश्रः संस्कृतवाङ्मये प्रतीकधर्मी-नाटकस्य आरम्भकर्ता आसीत् । तस्य कालः एकादशशताब्दी आसीत् । तेन "प्रबोधचन्द्रोदयः" नामकं नाटकं विरचितम् । एतत् नाटकं वाराणस्यां प्रथमम् अभिनीतम् । अस्य उत्कलीयत्वं निम्नलिखितसंवादेन ज्ञायते-

"अहमुत्कलदेशादागतोऽस्मि । अस्ति तत्र सागरतीरसन्निवेशे पुरुषोत्तमशब्दितं देवायतनम् ।"

अतः ज्ञायते यत् कृष्णमिश्रः उत्कलीयः आसीत् ।

नारायणसत्कविः

नारायणसत्कविः सम्बलपुरप्रदेशस्य प्रतिष्ठितः स्रष्टा आसीत् । तेन "रामाभ्युदयकाव्यम्" विरचितम् । काव्यस्य आरम्भे सः लिखति -

"श्रीवत्सचरणाब्जपूजनमतिः नारायणः सत्कविः ।
श्रीरामाभ्युदयाभिधं रसमयं काव्यं स तत् व्याधात् ॥[2]

शतानन्दाचार्यः

शतानन्दाचार्यः धर्मशास्त्रज्योतिषयोः विख्यातः विद्वान् आसीत् । तेन "शतानन्दसंग्रहः", "भास्वती", "शतानन्दरत्नमाला" इति त्रयः ग्रन्थाः विरचिताः ।

गोवर्धनाचार्यः

गोवर्धनाचार्यः कविजयदेवस्य समकालिकः आसीत् । तेन "आर्यासप्तशती" नामकः ग्रन्थः विरचितः ।

कविजयदेवः

कविजयदेवः ओडिशादेशस्य अनन्यप्रतिभासम्पन्नः कविः आसीत् । तेन "गीतगोविन्दम्" नामकं गीतिकाव्यं विरचितम् । राधाकृष्णयोः अलौकिकप्रणयतत्त्वम् आधारं कृत्वा एतत् काव्यं रचितम् । काव्यस्य आरम्भे उक्तम् -

यदि हरिस्मरणे सरसं मनः ।
यदि विलासकलासु कुतूहलम् ।
सरसकोमलकान्तपदावलीं ।
शृणु तदा जयदेवसरस्वतीम् ॥[3]

जगन्नाथस्य समीपे एतत् काव्यं भक्त्यार्घरूपेण समर्पितम् इति कथ्यते ।

तस्य अन्यकृतिभिः अपि सः प्रसिद्धः आसीत् । यथा - पीयूषलहरी, गोष्ठीरूपकम्, दशावतारः, रतिमञ्जरी इत्यादयः ।

जयदेवःपुरीजिलान्तर्गतकेन्दुबिल्वग्रामे जन्म लब्धवान् इति अनेकैः ऐतिहासिकैः प्रतिपादितम् । तथापि विशेषतः आङ्ग्लशासनकाले कतिपये अनोडियाः आलोचकाः उद्देश्यपूर्वकं तम् ओडिशायाः साहित्यपरम्परायाः अपहर्तुं बहु प्रयत्नं कृतवन्तः । मिथिलायाः कविः चन्द्रदत्तः स्वलिखिते भक्तमाला ग्रन्थे स्पष्टतया लिखति -

---

[2] संस्कृतसाहित्यस्येतिहासः-704

[3] संस्कृतसाहित्यस्येतिहासः-705

जगन्नाथपुरीप्रान्ते देशे चैवोत्कलाभिधे।
केन्दुबिल्व इति ख्यातो ग्रामो ब्राह्मणसङ्कुलः ॥
तत्रोत्कले द्विजो जातो जयदेव इति श्रुतः।
वेदाभ्यासरतः शान्तः पुरुषोत्तमपूजकः ॥[4]

एवं बहुषु प्रमाणेषु सन्तेष्वपि तस्य जन्मस्थानविषये भ्रमपूर्णानि मतानि प्रचलितानि आसन्।

कविविद्याधरः

विद्याधरः ओडिशादेशस्य विशिष्टः आलङ्कारिकः कविः आसीत्। तेन "एकावली" नामकः प्रसिद्धः आलङ्कारग्रन्थः विरचितः।

कविनारायणदासः

नारायणदासः महा-महोपाध्याय-चण्डीदासस्य पितामहः तथा विश्वनाथकविराजस्य वृद्धपितामहः आसीत्। तेन जयदेवकृतगीतगोविन्दस्य उपरि "सर्वाङ्गसुन्दरी" नाम्नी टीका विरचिता।

"नत्वा श्रीहरिचरणं कुरुते सर्वाङ्गसुन्दरीटीकाम्।
श्रीनारायणदासः कविराजोऽयं गीतगोविन्दम्॥[5]

महा-महोपाध्याय-चण्डीदासः

चण्डीदासः नारायणदासस्य पौत्रः तथा विश्वनाथस्य पितामहः आसीत्। तेन मम्मटकृतस्य "काव्यप्रकाशस्य" उपरि "काव्यप्रकाशदीपिका" नाम्नी टीका विरचिता।

कृष्णानन्द-सान्धिविग्रहिक-महापात्रः

कृष्णानन्दमहापात्रेण नलदमयन्त्युपाख्यानम् आधारं कृत्वा पञ्चदशसर्गात्मकं "सहृदयानन्दमहाकाव्यम्" विरचितम्।

सान्धिविग्रहिक-चन्द्रशेखरमहापात्रः

चन्द्रशेखरमहापात्रः विश्वनाथकविराजस्य पिता तथा गङ्गवंशीयराज्ञः भानुदेवस्य सभाकविः आसीत्। तेन "पुष्पमाला" तथा "भाषार्णवः" इति ग्रन्थौ विरचितौ।

डिण्डिम-जीवदेवाचार्यः

डिण्डिमजीवदेवाचार्यः गजपति-प्रतापरुद्रदेवस्य गुरुः मन्त्री च आसीत्। सः पञ्चत्रिंशद्वर्षवयसा एव युद्धक्षेत्रे भागवतस्य दशमस्कन्धम् आधारं कृत्वा "भक्तिभागवतम्" नामकं महाकाव्यं विरचितवान्।

कविचन्द्रायदिवाकरमिश्रः

दिवाकरमिश्रः ओडिशादेशस्य प्रख्यातः संस्कृतविद्वान् आसीत्। सः तार्किकवैदेश्वरमिश्रस्य पुत्रः, मुक्तादेव्याः सुतः च आसीत्। सः विजयनगरराज्ञः कृष्णदेवरायस्य सभायां विशेषं यशः प्राप्तवान्। तस्य "भारतामृतमहाकाव्यस्य" षष्ठसर्गे एतत् प्रमाणं दृश्यते -

कर्णाटाधिपकृष्णरायसदसि ख्यातस्य विद्वत्तया।[6]

तेन "लक्षणादर्शमहाकाव्यम्", "प्रभावतीनाटकम्", "पारिजातहरणम्", "हरिचरितचम्पूः", "रसमञ्जरी", "धूर्तचरितम्", "देवीशतकम्" इत्यादयः ग्रन्थाः रचिताः।

कवीन्द्रमार्कण्डेयमिश्रः

मार्कण्डेयमिश्रः पण्डितमङ्गलदेवस्य पुत्रः आसीत्। तेन "दशग्रीववधः" नामकं काव्यं तथा "प्राकृतसर्वस्वम्" नामकं प्राकृतव्याकरणग्रन्थः विरचितः। सः "कविराजराजचक्रवर्ती" इति उपाधिना विभूषितः आसीत्।

हरिहरमिश्रः (विद्याभूषणः)

हरिहरमिश्रः धराकोटराजसभायाः पण्डितः आसीत्। सः साहित्यशास्त्रविशारदः आसीत्। तेन "कालविवेकः" नामकः ग्रन्थः सम्पादितः। धराकोटराजसभायां सः "विद्याभूषण" इति उपाधिना सम्मानितः।

---

[4] उडिशायाः पाण्डित्यपरम्परा -200
[5] संस्कृतसाहित्यस्येतिहासः-706-709
[6] संस्कृतसाहित्यस्येतिहासः-714,715,703

हरेकृष्णशतपथी

हरेकृष्णशतपथी कटकजिलायाः असुरेश्वरप्रदेशे 5.8.1956 तमे वर्षे जन्म प्राप्तवान् । सः पुरीस्थितात् श्रीसदाशिवकेन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठात् साहित्याचार्योपाधिं प्राप्तवान् । अनन्तरं रेवेन्सामहाविद्यालये अध्यापनकार्यं आरब्धवान् । पश्चात् राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थाने विद्यावारिधि-उपाधिं प्राप्तवान् । 2006 तमे वर्षे तिरुपतिस्थकेन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठस्य कुलपतिः अभवत् ।

तेन "गङ्गा-जलदूषितम्", "संस्कृतसाहित्यस्य इतिहासः", "रघुवंशः", "कुमारसम्भवः", "स्वप्नवासवदत्तम्", "किरातार्जुनीयम्", "साहित्यदर्पणः", "कठोपनिषद्", "अभिज्ञानशाकुन्तलम्", "शिशुपालवधम्" इत्यादीनां सम्पादनं कृतम् । "गङ्गालहरी", "श्रीचन्द्रशेखरसरस्वतीशतपुष्पमाला" इत्यादयः तस्य काव्यप्रतिभायाः प्रमाणानि सन्ति । सः पञ्चाशदधिकानि अनुसन्धाननिबन्धान् अलिखत् तथा पञ्चदश पत्रिकानां सम्पादनम् अकरोत् । "संस्कृतसाहित्यस्य इतिहासः" इति ग्रन्थस्य कृते सः ओडिशासाहित्य-अकादेमी-पुरस्कारं प्राप्तवान् ।[7]

मुरारिमिश्रः

मुरारिमिश्रः "अनर्घराघव" इति नाटकस्य रचयिता अस्ति । रामायणस्य विषयवस्तुम् आधारीकृत्य एतन्नाटकं विरचितम् अस्ति ।

श्रीहर्षः

श्रीहर्षः संस्कृतवाङ्मयस्य एकः विशिष्टः कविः आसीत् । तस्य प्रसिद्धं महाकाव्यं "नैषधीयचरितम्" इति । तदतिरिक्तम् अन्येऽपि बहवः दर्शनग्रन्थाः तेन विरचिताः । विभिन्नाः ऐतिहासिकाः कवयः तं विभिन्नदेशीयं कविं प्रतिपादयितुं प्रयत्नवन्तः, किन्तु सः ओडिशादेशीयः कविः इति बहूनि प्रमाणानि सन्ति ।

अतिबडि जगन्नाथदासगोस्वामी

जगन्नाथदासः ओडिशादेशस्य गजपतिराज्ञः प्रतापरुद्रदेवस्य समकालिकः आसीत् । तस्य मुख्यकृतिः "ओडियाभागवतम्" इति, अतः सः गृहे गृहे प्रसिद्धः अभवत् । तस्य अनेकानि संस्कृतकाव्यानि सन्ति, यथा -

१. उपासनाशतकम्
२. श्रीकृष्णभक्तिकल्पलता
३. जगन्नाथचरिताम्भोधिसरणिः
४. नित्यनीलाद्रिविलासः
५. नित्यगुप्तचूडामणिः
६. षोडशचतुःस्पदी
७. श्रीकृष्णभक्तिलताफलम्
८. नित्यगुप्तमाला
९. रासमञ्जरी
१०. नित्याचारदीक्षासहितोपासनाविधिः
११. सुगुणीस्तुतिः ।

एतेषु केचन ग्रन्थाः तेन संकलिताः अपि इति ज्ञायते ।[8]

कविः हलधरमिश्रः

कविः हलधरमिश्रः खोर्धाराजवंशस्य प्रसिद्धस्य राज्ञः नरसिंहदेवस्य समकालिकः आसीत् । सः "वसन्तोत्सवमहाकाव्यम्" इति प्रसिद्धं महाकाव्यं विरचितवान् । एतदतिरिक्तं तेन "संगीतकल्पलता" तथा "हलधरकारिका" इति द्वौ ग्रन्थौ अपि विरचितौ ।

सूर्यमणिरथः-

कटकजिलायाः नरसिंहपुरमण्डलस्य अन्तर्गतस्य त्रिलोचनपुरशासनग्रामे प्रोफेसर सूर्यमणिरथः जन्म अलभत । सः ओडिशादेशस्य प्रख्यातः साहित्यशास्त्रविशारदः आसीत् । तस्य पाण्डित्यं विद्वत्ता च सम्पूर्णे भारते सर्वैः स्वीकृता । छात्रावस्थायामेव सः (१) "समस्यापूर्तिशतकम्" तथा (२) "परोपकारी" नामकं एकाङ्किकारूपकं लिखितवान् । तस्य अन्याः कृतयः यथा—

३. श्रीवेङ्कटेश्वरशतकम्

---

[7] उडिशायाः पाण्डित्यपरम्परा -474

[8] संस्कृतसाहित्यस्येतिहासः-703,712,716

४. आधुनिकभारतम्
५. काश्मीरोदयम् (संस्कृतखण्डकाव्यम्)
६. रसगङ्गाधरस्य ओडियामणिव्याख्या
७. काव्यप्रकाशस्य ओडियामणिव्याख्या
८. साहित्यदर्पणस्य ओडियामणिव्याख्या
९. ध्वन्यालोकस्य ओडियामणिव्याख्या
१०. व्यक्तिविवेकस्य (प्रथमविमर्शः) ओडिया-मणिव्याख्या
११. भामहकृतकाव्यालङ्कारस्य (प्रथमपरिच्छेदः) ओडिया-व्याख्या
१२. रसगङ्गाधरस्य प्रश्नोत्तरमाध्यमेन आलोचना
१३. काव्यप्रकाशस्य आलोचना
१४. ध्वन्यालोकस्य आलोचना
१५. व्यक्तिविवेकस्य आलोचना
१६. "श्रीगीतगोविन्दस्य" लक्ष्मणभट्टकृत-रसिकसञ्जीवनीटीकायाः सम्पादनम्
१७. किरातार्जुनीय-लोकोक्तिः
१८. साहित्यतरङ्गः
१९. निबन्धशतकम्
२०. अलङ्कारशास्त्रस्य इतिहासस्य सम्पादनम् तथा आलोचनासभाकार्यावल्याः सम्पादनम्
२१. नीतिशतकस्य ओडिया-व्याख्या
२२. चाणक्यनीतेः ओडिया-व्याख्या (अप्रकाशिता)
२३. वैराग्यशतकम् (अप्रकाशितम्)
२४. प्रतिष्ठाविद्यादर्शः ।[9]

डॉ. ब्रजसुन्दरमिश्रः

ओडिशायाः सः एकः प्रख्यातः साहित्यव्याकरणविशारदः आसीत् । तेन मेघदूतम् (ओडियाभाषानुवादः) तथा साहित्यदर्पणः (ओडियाभाषानुवादः) अनूदितौ ।

सः अन्यदपि एकं काव्यं कार्गिलकाव्यम् इति ।

❖ उपसंहारः-

उत्कलस्य संस्कृतसाहित्यपरम्परा अतीव समृद्धा गौरवमयी च अस्ति । अत्र विद्वद्भिः कविभिः आचार्यैः च स्वकीयप्रतिभया संस्कृतवाङ्मयस्य अभूतपूर्वो विकासः कृतः । तेषां रचनासु साहित्यसौन्दर्यम्, भक्तिभावः, दार्शनिकचिन्तनम्, सांस्कृतिकचेतना च सम्यक् प्रतिफलति । एषा परम्परा न केवलम् उत्कलस्य गौरवं वर्धयति, अपि तु समग्रभारतीयसंस्कृतसाहित्यस्य अमूल्यं धनम् इति मन्यते । अतः अस्याः साहित्यपरम्परायाः संरक्षणं प्रचारश्च अस्माकं सर्वेषां कर्तव्यं भवति ।

❖ संदर्भग्रथसूची-

१. मिश्रः डॉ. सुरेन्द्रकुमारः, ओडिशायाः पाण्डित्यपरम्परा, ओडिशा साहित्य एकेडेमी, भुवनेश्वरम्, २०२३ ।
२. संस्कृतसाहित्यस्य इतिहासः, डॉ. हरिकृष्णशास्त्री, किताबमहलम्, कटकः, १९९१ ।
३. अमरकोशः, चौखम्बासंस्कृतप्रतिष्ठानम्, वाराणसी, २०१६ ।
४. गीतगोविन्दः, सत्यनारायण पुस्तकालयः, विनोद विहारी, कटक,२०२१
५. कविराज विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, व्या. शास्त्री, शालीग्राम्, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, नवम संस्करण-१९७७
६. श्रीहर्ष, नैषधीयचरित, व्या., शास्त्री, सुरेन्द्र देव, चौखम्वा ओरियन्टलिया, वाराणसी, वि.सं.

[9] उडिशायाः पाण्डित्यपरम्परा -463

सातवाहन युगीन अभिलेखों में निरूपित भूमि अनुदान परम्पराः समीक्षात्मक अध्ययन

सत्यम यादव*

शोध सार

सातवाहन काल का ऐतिहासिक रोचक तथ्य यह है कि सातवाहनों और उनके समकालिक क्षत्रपों के द्वारा पहली बार किये जाने वाले भूमि अनुदानों में राजस्व एवं अन्य करों से मुक्ति के प्रावधान भी रखे थे। भूमि अनुदान का प्रथम अभिलेखीय साक्ष्य सातवाहनों के अधीन प्राप्त हुआ है। सातवाहन शासकों तथा उनके अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा प्रदत्त भूमि अनुदान प्रायः ब्राह्मणों, बौद्ध संघों तथा धार्मिक संस्थाओं को दिया गया था। इन अनुदानों का प्रमुख उद्देश्य धार्मिक प्रतिष्ठा प्राप्त करना, सामाजिक समर्थन सुनिश्चित करना तथा स्थानीय प्रशासन को स्थायित्व प्रदान करना था। सातवाहन अभिलेखों जैसे नानाघाट, नासिक, कन्हेरी आदि के अभिलेख इस परम्परा के उत्कृष्ट उदाहरण है।

कूट शब्दः भू-स्वामित्व, भू-अनुदान, आहार, परिहार, गुहाभिलेख, चीवर, निर्वतन (भूमि मापक इकाई)

प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय इतिहास में भूमि अनुदान की परम्परा राज्य, धर्म और समाज के अन्तर्सम्बन्धों को समझने का महत्वपूर्ण साधन है। दक्कन क्षेत्र में इस परम्परा के प्रारम्भिक स्वरूप का विकास सातवाहन काल में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। सातवाहन लगभग प्रथम शताब्दी ई0 पू0 से तृतीय शताब्दी ई जिन्होने मौर्योत्तर कालीन भारत में राजनीतिक स्थिरता स्थापित की तथा दक्कन क्षेत्र को उत्तर भारत से जोड़ा। सातवाहन शासकों गौतमीपुत्र सातकर्णि, वाशिष्ठीपुत्र पुलुमावि, रानी नागनिका (नयनिका) आदि के अभिलेखों **(1)** में भूमिदान, ग्राम दान, कर से मुक्त कर धार्मिक संस्थाओं को दिए गए अनुदानों का उल्लेख मिलता है। ये अभिलेख न केवल धार्मिक गतिविधियों का प्रमाण है अपितु प्रशासनिक संरचना, राजस्व प्रणाली और सामाजिक संगठन पर भी प्रकाश डालते है।

शोध उद्देश्य

- सातवाहन कालीन अभिलेखों भू अनुदान सम्बन्धी विवरणों को एकत्रित करना।
- सातवाहन कालीन अभिलेखों में भूमि संकेतको एवं अनुदानों की प्रकृति के स्वरूप का अध्ययन करना।
- भू अनुदानों के लिए प्रेरित करने वाले कारकों का अध्ययन करना।
- अनुदानों के द्वारा होने वाले परिवर्तन एवं परिणामों (सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक) का अध्ययन करना।
- भूमि अनुदान एवं शैशव अवस्था में सामंतवाद के अन्तर्सम्बंध को समझना।

शोध प्रश्न

सातवाहन काल में भूमि अनुदान केवल धार्मिक दान नहीं थे अपितु वे राजनीतिक नियंत्रण एवं प्रशासनिक सुदृढीकरण का माध्यम भी थे। भूमि अनुदानों ने स्थानीय ब्राह्मणीय एवं श्रामणिक धार्मिक व शैक्षिक संस्थाओं को आर्थिक शक्ति प्रदान की। भूमि अनुदान व्यवस्था ने सामन्तवादी प्रवृत्तियों के प्रारम्भिक स्वरूप को जन्म दिया। क्या सातवाहन काल में भूमि अनुदान केवल धार्मिक दान थे, या वे प्रशासनिक एवं राजनीतिक नियंत्रण की रणनीति भी थे?

शोध की प्रकृति एवं पद्धति

सातवाहन कालीन अभिलेखों में भूमि अनुदान सम्बन्धी विवरण शोध शीर्षक ऐतिहासिक, अभिलेखीय एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति पर आधारित है। इसमें उपलब्ध अभिलेखों का मूल पाठ, अनुवाद, व्याख्या एवं सन्दर्भानुसार विश्लेषण किया गया है।

शोध पद्धति के अन्तर्गत सातवाहन अभिलेखों में प्रयुक्त ब्राह्मी लिपि का अध्ययन, इनकी प्राकृत भाषा में लिखित पाठ एवं अनुवाद का पठन। तकनीकि शब्दों जैसे अग्रहार, आहार, भोग, निवर्तन, चीवर आदि का विश्लेषण कर शोध निष्कर्ष तक पहुँचना। चूँकि सातवाहन कालीन अभिलेखों की संख्या सीमित है तथा कई अभिलेख क्षतिग्रस्त अवस्था में है इसलिए इनकी अपनी सीमाएँ भी है।

शोध स्रोत

शोध सामाग्री के रूप में मुख्यतः प्राथमिक स्रोत के रूप में अभिलेखों को शामिल किया गया है जिनका आधार **'इपिग्राफिया इण्डिका,' वाल्यूम 8** है। अभिलेखों में मुख्यतः नासिक गुहाभिलेख, नानाघाट अभिलेख, कार्ले, कन्हेरी इत्यादि शामिल है। इनका अध्ययन तथा विश्लेषण हमें शोध निष्कर्ष तक पहुँचने में सहायक हुए। द्वितीयक स्रोत में शोध विद्वानों के

* शोध अध्येता, प्राचीन इतिहास विभाग, सदनलाल सांवलदास खन्ना महिला महाविद्यालय, प्रयागराज
संघटक महाविद्यालय– इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

साहित्य को शामिल किया गया है जिसमें डी. सी. सरकार की **'सेलेक्ट इन्शक्रिप्शन'**, वी. वी. मिराशी की **'द हिस्ट्री एण्ड इन्शक्रिप्शन ऑफ सातवाहनाज एण्ड द वेस्टर्न क्षत्रपाज'**, श्रीराम गोयल की **'प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह' खण्ड 01**, परमेश्वरी लाल गुप्त की **'प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख', भाग 01**, एवं आर. एस.शर्मा की **'भारतीय सामन्तवाद'** आदि को शामिल किया गया है।

भूमि अनुदान को प्रेरित करने वाले कारक

भूमि अनुदान को प्रेरित करने वाले कई कारक थे। **पहला,** भूमि अनुदान के माध्यम से दूरस्थ क्षेत्र में कृषि का प्रसार सम्भव था। **दूसरा,** भूमि अनुदान के माध्यम से शासक की शक्ति एवं प्रभाव का विस्तार सम्भव था। **तीसरा,** अनुदान के माध्यम से आर्य संस्कृति का प्रसार सम्भव था। **चौथा,** अनुदान के माध्यम से धार्मिक क्रियाकलापों के विस्तार में मदद प्राप्त हो सकती थी।

भूमि अनुदान परम्परा के प्रारम्भिक संकेत

प्राचीन भारतीय कालक्रम का अवलोकन करने के उपरान्त वैदिक एवं उत्तरवैदिक साहित्य की ओर देखें तो प्रत्यक्ष भूमि अनुदान का विवरण कम मिलता है किन्तु दान की व्यापक परम्परा का उल्लेख अवश्य मिलता है। शतपथ ब्राह्मण तथा अन्य ब्राह्मण ग्रन्थों में राजा द्वारा ब्राह्मणों को दान देने की परम्परा का वर्णन आता है। यद्यपि यहाँ भूमि का विशेष उल्लेख नही है फिर भी यह दान की उस मानसिकता को दर्शाता है जो आगे चलकर भूमि अनुदान के रूप में विकसित होगी।

सामान्यतः बसे-बसाए गाँव और आबाद भूमि ही दान की जाती थी। वीरान इलाकों में गाँव बसाने अथवा बंजर भूमि को आबाद कराने के उद्देश्य से ब्राह्मणों को भूमि अनुदान देने का प्रचलन संभवतः प्राक् मौर्य काल में प्रारम्भ हुआ जब कभी-कभी मगध और कोसल के राजाओं ने राजकीय भूमि के कुछ हिस्से ब्राह्मणों को दिये। यह प्रथा मौर्य काल में भी प्रचलित रही। इस काल में कर और दण्ड के अधिकारों से मुक्त कुछ भूमि कतिपय ब्राह्मणों के लिए अलग रख दिये जाते थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कहा गया है कि नई बस्तियों में ब्रह्मदेय भू-स्वामित्व के अनुसार भूमिदान करना चाहिए और ब्रह्मदेय भू-स्वामित्व की शर्तों में कर और दण्ड मुक्ति भी शामिल है। **(2)** इसका उद्देश्य अधिक भूमि को जोत में लाना था क्योंकि अर्थशास्त्र की यह व्यवस्था नई बस्तियाँ बसाने की योजना जनपद निवेश का एक अंग है। यह प्रक्रिया आगे भी जारी रही।

जहाँ तक भू अनुदानों की बात है तो ये महात्मा बुद्ध के समय पर भी अनुदानित किये दिखाई पड़ते है। कोसल, मगध के राजाओं द्वारा भूमि दान देने का उल्लेख पाली साहित्य में प्राप्त होता है। जेतवन, वेलुवन, घोषिताराम विहार इसके उदाहरण है। परन्तु इस काल में हमे दानग्राही व्यक्ति को भूमि अधिकार के साथ प्रशासनिक अधिकारों के हस्तान्तरण का प्रमाण नहीं मिलता है। महाभारत के अनुशासन पर्व में धार्मिक भू अनुदानों की प्रशंसा एक पूरे अध्याय में किया गया है परन्तु यहाँ भी किसी प्रशासनिक अधिकार की बात नहीं की गई है। **(3)** धर्मशास्त्रीय साहित्य में भूमि अनुदान का स्पष्ट और व्यवस्थित उल्लेख मिलता है। मनुस्मृति में भूमि अनुदान को श्रेष्ठ दान बताया गया है।

सातवाहन कालीन भूमि अनुदान एवं प्रकृति

यदि अभिलेखीय साक्ष्यों की बात करें तो मौर्योत्तर काल से भूमि अनुदान के प्रारम्भिक संकेत मिलते है। भूमि अनुदान का सबसे प्राचीनतम अभिलेखीय साक्ष्य ई0 पू0 प्रथम शताब्दी के सातवाहन कालीन नागनिका (नयनिका) के नानाघाट अभिलेख में मिलता है जिसमें अश्वमेघ यज्ञ में एक गाँव दान में देने की चर्चा है परन्तु यहाँ भी प्रशासनिक अधिकार ग्रहीता को उपलब्ध नही कराया गया है। **(4)**

प्रशासनिक अधिकारों के हस्तान्तरण का प्रथम प्रमाण सातवाहन कालीन शासक गौतमीपुत्र सातकर्णि द्वारा बौद्ध भिक्षुओं को गाँव दान दिये जाने के संदर्भ में मिलता है। गौतमीपुत्र सातकर्णि के नासिक लयण अभिलेख वर्ष 18 से ज्ञात होता है कि उसने अपरकखण्ड ग्राम के खनिज संसाधनों, द्रव्यों पर राज्यकर्मचारी न तो कोई दावा करेंगे और न ही प्रशासनिक नियंत्रण रखेंगे। यह परिहार (छूट) स्पष्ट करता है कि गौतमीपुत्र सातकर्णि ने यहाँ के भिक्षुओं को करों से मुक्त रखा था। ***'एतस चस खेतस परिहार वितराम अपावेसं अनोमस अलोण-खा दकं अरठसविनयिक सवजातपारिहारिक च'*** **(5)**

वाशिष्ठी पुत्र पुलुमावि के नासिक लेख वर्ष 19 से ज्ञात होता है कि उसने त्रिरश्मि पर्वत के अपर-दक्षिण पार्श्व में स्थित पिशचीपद्रक गाँव को सर्वराज्याधिकार से मुक्त कर भिक्षुओं को दान किया। कभी-कभी अनुदान प्राप्तकर्ता को न्यायिक एवं प्रशासनिक अधिकार भी प्रदान किये जाते थे। ***'एतस च लेण चितस निमित............. गामं तिरण्हु पवतस अपर दक्षिण पसे पिसाजिपदक सव जात भोग निरठि'*** **(6)**

सातवाहन और उनके समकालिक क्षत्रप नहपान के नासिक गुहालेख (संख्या 10) वर्ष 41 में उषावदात द्वारा कर्पूर आहार में स्थित चिखलपद्र नामक ग्राम में नारियल का एक पूरा बाग दान दिये जाने का उल्लेख है। ***'कापूराहारे च गाम चिखलपद्रे दतानि नालिगेरान'*** **(7)** इसी गुहालेख के दूसरी तरफ एक अन्य लेख प्राप्त हुआ। यह लेख भी क्षत्रप शासक नहपान के दामाद और दीनीक पुत्र उषावदात द्वारा दान किये गये विवरणों की व्याख्या करता है। अभिलेख में वर्णित है कि उसने तीन हजार गायें दान में दिये, वर्णासा नदी पर सुवर्ण तथा सीढ़ियों का दान दिया, देवताओं और ब्राह्मणों को 16 ग्राम दान दिये, जो प्रतिवर्ष एक लाख ब्राह्मणों को भोजन कराता था। इसके अतिरिक्त धर्मात्मा उषावदात द्वारा गोवर्धन प्रदेश में त्रिरश्मि पर्वत पर यह गुफा और जलकुण्ड बनवाये गये। पुष्करतीर्थ (अजमेर) जाकर स्नान किया तदुपरान्त नासिक में उसके द्वारा

वाराहीपुत्र अश्वभूति नामक ब्राह्मण के हाथ से 4 हजार कार्षापण से खेत खरीदकर ग्राम दान दिया गया जिसपर अश्वभूति के पिता का स्वत्व था। यह नगर के पश्चिमोत्तर सीमा पर स्थित था। इससे गुहा में रहने वाले चारों दिशाओं से आये भिक्षु संघ का भोजन की व्यवस्था था। ***'ब्राह्मणस वाराहि पुत्रस अश्विभूतिस हथे कोणिता मुलेन काहापण सहस्रहि चतुहि 4000 यो स पितु सतक नगरसीमायं उतारपरायं दीसाय एतो मम लेने वस*(8)** इसीप्रकार नहपान कालीन कार्ले के अभिलेख में उल्लेख मिलता है कि नहपान के दामाद उषावदात ने प्रव्रजियों के वर्षाकाल में यापन (भोजन) एवं निवास के लिए करजिक ग्राम का दान दिया था। **(9)**

अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर भूमिदान को हम सामान्यतः तीन वर्गों में विभक्त कर सकते है।

1. **निवास स्थान के लिए दिये गये दान** जैसे- मौर्य सम्राट अशोक एवं उसके पौत्र दशरथ द्वारा आजीवकों को वर्षावास के लिए दिये गये गुहादान तथा शक क्षत्रप उषावदत्त द्वारा भिक्षु संघ को वर्षावास के लिए दिया गया लयण दान।
2. **क्षेत्र अथवा खेत के रूप में दिये गये भूमि दान** जैसे- रानी नयनिका, गौतमीपुत्र सातकर्णि तथा वाशिष्ठीपुत्र पुलुमावि के दान
3. **ग्राम अनुदान -** ई0 की चौथी शताब्दी में ग्राम अनुदानों मे तेजी आयी और कालान्तर में यह क्रम कई सदियों तक चलता रहा।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि भूमिदान के स्वरूप एवं सिद्धान्त समय-समय पर परिवर्तित दिखायी पड़ते है।

भूमि स्वामित्व

राजा भूमि का स्वामी होता था परन्तु भू स्वामित्व के कई प्रकार थे। राज्य की अपनी भूमि होती थी जिसे शासक अपने अधिकारियों की सहायता से कृषि करवाता था। कृषकों के पास अपनी भूमि होती थी, इस भूमि का राजस्व कर के रूप में वह शासक को सौंपता था। इस काल में भू स्वामित्व का एक अन्य उदाहरण भू-अनुदान है। यद्यपि मौर्यकालीन ग्रंथ अर्थशास्त्र तथा पालि साहित्य में ब्राह्मणों को भू दान के विवरण प्राप्त है परन्तु प्रथम अभिलेखीय साक्ष्य सातवाहन काल में नागनिका का नानाघाट अभिलेख है।

भूमि संकेतक

सातवाहन अभिलेखों से यह भी संकेत मिलता है कि अनुदान की सीमाएँ, दानकर्ता के नाम तथा उद्देश्य स्पष्ट रूप से उल्लिखित होते थे। दान दिये जाने वाले क्षेत्र को संकेतक के रूप में दर्शाया जाता था। भू-दान की सीमा तालाब, नदी पेड़, बगीचे, वन, पर्वत, गुहा आदि से प्रदर्शित किया गया है। **(10)** उदाहरणस्वरूप गौतमीपुत्र सातकर्णि के नासिक लयण लेख वर्ष 18 में उत्कीर्ण है कि अपरकखण्ड ग्राम जो पूर्व में उषावदात के अधिकार में था उसे त्रिरश्मि पर्वत पर निवास कर रहे बौद्ध भिक्षुओं को दान दिया। इसी अभिलेख में इस भूमि का क्षेत्र 200 निवर्तन भूमि बतलाया गया है। अतः निवर्तन भूमि (दूरी/क्षेत्रफल) मापक इकाई थी। ***'गामे अपर-कखडि-{ये} {य} खेतं अजकालकियं उसभसतेन भूतं निवतन-सतानि बे 200'* (11)**

भूमि अनुदान के परिणाम

सातवाहन कालीन भूमि अनुदान ने धर्म, समाज और सत्ता के बीच नया सम्बंध स्थापित किया। भूमि अनुदान के कई सकारात्मक परिणाम भी सामने आये। **पहला,** भूमि अनुदान के माध्यम से गैर आबाद भूमि को आबाद किया गया, उसे कृषि योग्य बनाया गया, एक बड़ी जनजातीय जनसंख्या कृषक जनसंख्या में ढली। **दूसरा,** सातवाहन शासकों ने भूमि अनुदान के माध्यम से जनजातीय क्षेत्रों में अपने प्रभाव का विस्तार किया। **तीसरा,** ब्राह्मण पुरोहितों ने कबीलाई तत्वों को वर्ण व्यवस्था की ओर आकर्षित किया। इसके परिणामस्वरूप अवैदिक तत्व धार्मिक व्यवस्था में शामिल हुये। ब्राह्मण धर्म में यज्ञ का प्रचलन था परन्तु जनजातीय तत्वों के प्रभाव में भक्ति का महत्व बढ़ गया। भक्ति के परिणामस्वरूप ब्राह्मण धर्म में वैष्णव भक्ति एवं शैव भक्ति का विकास हुआ, साथ ही साथ वृक्ष पूजा, पशु पूजा, सर्प पूजा, कार्तिकेय, संकर्षण, गणेश पूजा अस्तित्व में आये। वहीं बौद्ध भिक्षुओं ने उन्हे सत्य, अहिंसा का पाठ एवं अनुशासित जीवन जीना सिखाया। महायान और जनजातीय तत्वों ने मिलकर बुद्ध को शिक्षक एवं उपदेशक की जगह देवता के रूप में ला दिया।

भू-अनुदान एवं सामन्तवाद

सामन्तवाद इतिहास का बहुचर्चित विषय रहा है। सामन्तवाद अंग्रेजी के फ्यूडलिज्म शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है जिसका शाब्दिक अर्थ है जागीर। यूरोपीय विचारकों ने सामन्तवाद का अभिप्राय स्पष्ट करते हुए इसे राजनीतिक एवं न्यायिक क्षेत्र तक सीमित माना है जो केन्द्रीय शासन प्रणाली के विपरीत ठहरता है। मैक्सवेबर ने इसे केन्द्रीय सत्ता और जागीरदारों के मध्य का सम्बन्ध माना है जो जागीरदारों को व्यक्तिगत निष्ठा पर आधारित था। मार्क ब्ला ने अपनी पुस्तक 'फ्यूडल सोसायटी' में सामन्तवाद को ऐ टाइप ऑफ सोसायटी माना है। उन्होनें सामन्तवाद के निम्नलिखित संकेत दिये है- 1. प्रशासनिक अधिकारों का विकेन्द्रीकरण 2. पराधीन कृषक वर्ग 3. योद्धा वर्ग की प्रमुखता 4. नगद वेतन के स्थान पर व्यापक रूप से फैली जागीरें।

सामन्तवाद की उत्पत्ति एवं विकास की जड़े भू अनुदान की परम्परा से जुड़ी है। सामान्यतः सामन्तवाद से तात्पर्य एक ऐसी अवस्था से है जिसमें राज्य और जनसामान्य के बीच बड़े पैमाने पर बिचौलियों का उदय होना है। जहाँ तक भारतीय ऐतिहासिक सन्दर्भ में सामन्तवाद की बात है तो इसके उद्भव एवं विकास में आधुनिक युग के अनेक सामाजिक-आर्थिक

इतिहासकारों ने अपने विचार प्रकट किये है। सामन्त शब्द का उल्लेख कौटिल्य के अर्थशास्त्र में एक स्वतंत्र पड़ोसी के अर्थ में हुआ है। प्रथम शती ई0 में बुद्धचरित में इस शब्द का प्रयोग जागीरदार के सन्दर्भ में हुआ है, कालान्तर में गुप्त काल से सामन्त शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया जाने लगा।

भारतीय विद्वानों ने सामन्तवाद को भारतीय संदर्भ में स्पष्ट करने का प्रयास किया है। डी0 डी0 कोशाम्बी ने सामन्तवाद को द्विचरणीय प्रक्रिया माना है 1. निचले स्तर का सामन्तवाद 2. ऊपरी सामन्तवाद। ईस्वी की प्रारम्भिक शताब्दी में शासक ने भूमि कर एवं प्रशासनिक अधिकार अपने अधीनस्थ सामन्तो को सौंपना प्रारम्भ किया तो सामन्त किसानों के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आने लगे, इसे ऊपर से आने वाला सामन्तवाद कहा गया। वहीं बड़े जोतदार कृषक और जमीदार जिनकी स्थिति काफी मजबूत रही और शासक ने उसे सामन्ती सम्मान देकर नीचे से आने वाले सामन्तवाद को जन्म दिया। **(12)**

भारतीय इतिहास में सामन्ती व्यवस्था के उदय को डी. एन. झा पुराणों के उस सन्दर्भ से जोड़ कर देखते है जहाँ कलयुग में आकर वैश्यों और शूद्रों के द्वारा कर दिया जाना बन्द कर देने की बात कही गई थी। इस समस्या का समाधान भू-अनुदान के रूप में निकाला गया जहाँ भू राजस्व वसूलने का कार्य भू अनुदान प्राप्तकर्ता को प्राप्त हो गया। **(13)**

भारतीय सामन्तवाद के शाब्दिक अर्थ एवं स्वरूप पर विस्तार से चर्चा करने का श्रेय रामशरण शर्मा को जाता है। प्रोफेसर शर्मा ने भारत में सामन्तवाद की शुरूआत, भूमि अनुदान जिनमें मंदिरों एवं मठों को दी जाने वाली भूमि और इसके फलस्वरूप निर्मित अर्थव्यवस्था की विशेषताओं में ढूँढा है। उनके अनुसार सातवाहन कालीन भूमि अनुदान को हमें केवल धार्मिक अनुदान नहीं मानना चाहिए बल्कि यह भारतीय सामन्तवाद की प्रारम्भिक सीढ़ी थी। वहीं बी0एन0एस यादव इस मत से सहमत नहीं दिखाई पड़ते उनके अनुसार ब्राह्मणों को पुण्यार्थ दी गई भूमि जो मुश्किल से एक या उससे अधिक रही होगी, राजनीतिक सामन्तवाद का आधार नही हो सकती, विशेषकर तब जब दानग्राही बौद्धिक तथा धार्मिक प्रयोजनों में संलग्न रहे हो। वस्तुतः सामन्तवाद के विकास में धार्मिक अनुदानों की तुलना में धर्मेत्तर अनुदानों का योगदान रहा है जो मुख्यतः गुप्त एवं गुप्तोत्त र कालीन प्रवृत्ति थी। **(14)**

जिन आर्थिक प्रवृत्तियों के कारण सामन्तवाद के उदय में सहायता मिली, उनका सही-सही आकलन करना जरा कठिन है। इस सम्बन्ध में यह विचार करना है कि ब्राह्मणों और मठ, मन्दिरों को अनुदान में दी गई भूमि आबाद थी या परती। दूसरा, ये ग्रहीता अथवा दूसरे भूस्वामी स्वयं ही भूमि के जोतदार थे या इनकी जमीन अस्थायी रूप से काम पर रखे गये किसान जोतते थे। सातवाहन कालीन 130 ई के एक लेख से स्पष्ट होता है कि राजकीय भूमि का एक टुकड़ा बौद्ध भिक्षुओं को दान किया गया है और कहा गया है कि जहाँ भूमि जोती नहीं जाती है वहाँ गाँव नहीं बसता है। ***'त चखेत न कषते स च गमो न वसति'*** **(15)** इससे साफ जाहिर होता है कि कम से कम दूसरी शताब्दी ई0 में जो गाँव दान में दिये जाते थे, उनमें जोत की जमीन रहती थी।

सीमाएँ

यद्यपि भूमि अनुदान के कई सकारात्मक परिणाम आये तथापि कुछ नकारात्मक परिणाम भी परिलक्षित हुए, जैसे- अनुदान के कारण केन्द्रीकरण का ह्रास हुआ, यद्यपि आरम्भ में दानग्रहिताओं को केवल राजस्व प्राप्त करने का अधिकार था। किन्तु आगे चलकर इस क्षेत्र में राजकीय अधिकारियों का प्रवेश वर्जित हो गया फिर दानग्रहिताओं को प्रशासनिक एवं न्यायिक अधिकार भी सुपुर्द किये जाने लगे। आर. एस शर्मा के अनुसार सातवाहन कालीन भूमि अनुदान को हमें केवल धार्मिक अनुदान नहीं मानना चाहिए बल्कि यह भारतीय सामन्तवाद की प्रारम्भिक सीढ़ी थी। अपने प्रारम्भिक चरण में सामन्तवाद धार्मिक प्रवृत्ति के पुण्य कर्म के रूप में प्रतिष्ठित किया गया।

उपसंहार

सातवाहन कालीन अभिलेख जैसे नासिक गुहालेख, नानाघाट लेख आदि से ज्ञात होता है कि शासक बौद्ध एवं ब्राह्मणों को गुफाएँ, ग्राम तथा उनसे सम्बन्धित आय के स्रोत दान में दिया करते थे। सातवाहन काल में भूमि अनुदान केवल धार्मिक दान का प्रतीक न होकर, राजनीतिक नियंत्रण, आर्थिक पुनर्वितरण और सामाजिक संरचना को सुदृढ़ करने का माध्यम भी था। इसीप्रकार उनके समकालिक शक-क्षत्रपों के अभिलेखों में विशेषकर नासिक गुहालेख तथा कार्ले अभिलेख उषावदत्त से भूमि अनुदान परम्परा का ज्ञान प्राप्त होता है। यह परम्परा आगे चलकर गुप्त एवं पूर्व मध्य काल के शासकों द्वारा अपनयी गई जिससे भारतीय भू-राजस्व व्यवस्था को दीर्घकालीन स्वरूप की नींव पड़ी।

सन्दर्भ

1. सिंह, उपिन्दर, (2022), *प्राचीन एवं पूर्वमध्यकालीन भारत का इतिहास,* (अनुवाद द्वारा हितेन्द्र अनुपम), पियर्सन इण्डिया एजुकेशन सर्विसेज प्रा0लि0, सप्तम संस्करण, नोएडा, पृष्ठ 412
2. शर्मा, आर. एस. (2024), *भारतीय सामन्तवाद,* राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., चौदहवां संस्करण, नई दिल्ली, पृष्ठ 14 एवं अर्थशास्त्र, अध्याय 02, श्लोक 01
3. शर्मा, आर. एस. (2024), *भारतीय सामन्तवाद,* पृष्ठ 12
4. सरकार, डी. सी. (1965), *सेलेक्ट इन्सक्रिप्शन्स,* वाल्यूम 01, यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, कलकत्ता, पृष्ठ 188

5. सरकार, डी. सी. (1965), *सेलेक्ट इन्सक्रिप्शन्स,* वाल्यूम 01, पृष्ठ 192-198
6. गोयल, श्रीराम, (1982), *प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह,* खण्ड 1, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, प्रथम संस्करण, जयपुर, पृष्ठ 442
7. गुप्त, परमेश्वरी लाल, (2014). *प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख भाग 01,* विश्वविद्यालय प्रकाशन, सप्तम संस्करण, वाराणसी,पृष्ठ 194
8. सहाय, शिवस्वरूप, (2000), *भारतीय पुरालेखों का अध्ययन,* मोतीलाल बनारसीदास, तृतीय संस्करण, नई दिल्ली, पृष्ठ 206-07
9. गुप्त, परमेश्वरी लाल, (2014), *प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख,* भाग 01, पृष्ठ 197-98
10. चौधरी, राधाकृष्ण, (1989), *प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास,* जानकी प्रकाशन, पटना, पृष्ठ 66-67
11. गुप्त, परमेश्वरी लाल, (2014), *प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख,* भाग 01, पृष्ठ 182
12. कोसम्बी, डी.डी. (1972), *द कल्चर एण्ड सिविलाइजेशन ऑफ एन्शियण्ट इण्डियाः एन हिस्टोरिकल आउट लाइन,* विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा0 लि0, पुनर्मुद्रित, नई दिल्ली, पृष्ठ 07
13. झा, डी. एन. (2014 संस्करण), *आरम्भिक भारत का संक्षिप्त इतिहास,* (अनुवाद द्वारा अनुवाद प्रदीप कान्त चौधरी), मनोहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीव्यूटर, नई दिल्ली, पृष्ठ 181-82
14. यादव, बी.एन.एस. (2012 संस्करण), *सोसायटी एण्ड कल्चर ऑफ नादर्न इण्डिया,* राका पब्लिकेशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 140
15. सरकार, डी. सी. (1965), *सेलेक्ट इन्सक्रिप्शन्स,* वाल्यूम 01, पृष्ठ 194

cs80

राजा भोज और नाव निर्माण पद्धति

लालबाबू यादव*

युक्तिकल्पतरू–एक परिचय

युक्तिकल्पतरू भारतीय ज्ञान परम्परा का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है जिसकी रचना परमार वंश के प्रसिद्ध शासक राजा भोज ने 11वीं शताब्दी में की थी। *'इतिश्री भोजराजीये युक्तिकल्पतरौनीति युक्तिः'* (1) यह ग्रन्थ विज्ञान, वास्तु, यान्त्रिकी, जल प्रबन्धन, आयुर्वेद, रत्न परीक्षा तथा नौका निर्माण जैसे विविध विषयों पर व्यावहारिक ज्ञान प्रस्तुत करता है। ग्रन्थ में विशेष रूप से जलयान और नौका निर्माण का उल्लेख हुआ है। इसमें विभिन्न प्रकार की नावों और जहाजों की बनावट, आकार, लकड़ी के चयन तथा उनके उपयोग का वर्णन मिलता है।

युक्तिकल्पतरू का शाब्दिक अर्थ है– युक्तियों का कल्प वृक्ष। शुक्र नीति के अनुसार युक्ति का अर्थ है 'उत्तम प्रकार से जिस पर तर्क किया गया हो और जो शास्त्र और शिष्ट पुरूषों के अविरूद्ध हो ऐसे स्वार्थ सिद्धि के लिए बनायी गई योजना को युक्ति कहते है'। युक्तिकल्पतरू एक संग्रह ग्रन्थ है। संग्रहकर्ता अपने मत की पुष्टि करने वाले अथवा अपने मत से भिन्न मत वाले ग्रन्थकारों के श्लोक विस्तार से उद्धृत करते है। युक्तिकल्पतरू में 1935 श्लोक है और नीति युक्ति, द्वन्द युक्ति, नगरी युक्ति, वास्तु युक्ति, आसन युक्ति, छत्र युक्ति, ध्वज युक्ति, उपकरण युक्ति, अलंकार युक्ति, अस्त्र एवं यात्रा युक्ति नामक 11 अध्यायों में विभक्त है।

युक्तिकल्पतरू केवल साहित्यिक कृति नही बल्कि तकनीकि और वैज्ञानिक ज्ञान का विश्वसनीय स्रोत है। इतिहासकार इसे प्राचीन एवं पूर्वमध्यकालीन भारत के तकनीकि उपलब्धियों का प्रमाण मानते है। यह ग्रन्थ भारतीय विज्ञान और अभियान्त्रिकी परम्परा के समृद्धि को समझने में अत्यन्त सहायक है।

मूल शब्द – क्षुद्रा, दीर्घा, गभिर्णी, जन्तुयान, सर्वमन्दिरा

प्रस्तावना– जहाज निर्माण

अतीत में भारतीय हिन्द महासागर में लम्बी यात्राएँ करने में सक्षम थे और उन्होंने दूर–दूर के द्वीपों में अपनी बस्तियाँ बसाई। आरम्भिक संस्कृत ग्रंथों अर्थात् वेद, (2) जातक, पाणिनी की अष्टाध्यायी, (3) महाकाव्य, अर्थशास्त्र (4) आदि में समुद्री यात्राएँ और समुद्री व्यापार के संदर्भ हैं, परन्तु प्राचीन भारत में जहाज निर्माण पर प्रकाश डालने वाला महत्वपूर्ण ग्रंथ युक्तिकल्पतरू (कलाकृतियों का तमन्ना वृक्ष) है। इसका लेखकत्व ग्यारहवीं शताब्दी ई0 में धारा, यानी मध्य भारत के आधुनिक धारा में शासन करने वाले राजा भोज को माना जाता है।

राजा भोज साहित्य और इतिहास दोनों विद्याओं के विद्वान और कई मूल्यवान रचनाओं के लेखक के रूप में सुविख्यात हैं, जैसे समरांगण सूत्रधार (वास्तुकला), राजमार्तण्ड, सरस्वती–कण्ठाभरण, सुभाषित प्रबन्ध आदि। युक्ति कल्पतरू में जहाज निर्माण के विषय पर विस्तार से दो अध्याय हैं, जिनके नाम हैं निष्पदायनोद्देश और जग–हन्य जलयाननि। (5)

इस शोध पत्र में निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत इनका विवरण प्रस्तुत किया गया है।

- जहाजों के निर्माण के लिए सर्वोत्तम लकड़ी की किस्में
- समुद्र में जाने वाले जहाज को लोहे की कील से नहीं बांधने का भोज का निर्देश (6) यह प्रथा अरबों में भी पायी जाती है, मोतीचन्द ने सार्थवाह में लिखा है कि अरबों की तरह भारतीय भी अपने जहाज के तख्तों को नारियल के जटा की रस्सियों से सीकर बनाते थे। (7) यह सर्वविदित तथ्य है कि समुद्र में चलने वाली नौका को यदि लोहे से बांधा गया तो वह चुम्बकीय पत्थर से आकर्षित होने के कारण जहाज को पानी में डुबो सकता है।

* शोध छात्र, प्राचीन इतिहास विभाग, सदनलाल सांवलदास खन्ना महिला महाविद्यालय, प्रयागराज
मो. 08756443805, Email- lalbabuyadav8696@gmail.com

- जहाजों का वर्गीकरण– नदी में जाने वाले साधारण (सामान्य) तथा समुद्र में जाने वाले विशेष (विस्सा)
- साधारण (सामान्य) प्रकार के जहाज के नाम और माप
- दो प्रकार के विशेष जहाज, दीर्घा और उन्नता खण्ड

समरांगण सूत्रधार मानव आवासों, महलों, बस्तियों आदि की वास्तुकला से सम्बन्धित ग्रन्थ है। इसके यंत्रविधाननामिका एकत्रिशंतो अध्याय (31वें अध्याय) में विभिन्न प्रकार के यांत्रिक उपकरणों का वर्णन है, जैसे गजययंत्र (हाथी यंत्र), व्योमचारी यन्त्र, विमान यन्त्र आदि। समरांगण ने यंत्र को उस यंत्र के रूप में परिभाषित किया है जो भीतों को नियंत्रित करता है और उन्हें एक विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए कार्य करने के लिए प्रेरित करता है। **(8)** अर्थात् यह एक योजना के अनुसार उन चीजों की गति को निर्देशित और नियंत्रित करता है जो अपनी प्रकृति के अनुसार बताये गये है– जल यंत्र, अग्नि यंत्र और वायु यंत्र। इस शोध पत्र में केवल जल यंत्र की चर्चा की गई है।

जहाज निर्माण –

समरांगणसूत्रधार के अनुसार ''बिना पहिये वाला वाहन का चिह्न जहाज जैसा होता है। जमीन पर घोड़े जैसी गाड़ियाँ चलना सभी स्थापित तथ्य है। यदि पानी में चलने वाला वाहन जहाज जैसा हो तो उसे सावधानी से चलाना चाहिए। जहाज बनाने के लिए शुभ दिन, घण्टा, तिथि और चन्द्रमा का समय चुना जाना चाहिए।'' जब मंगल मकर राशि से छठें भाव में हो और अन्य राशियों में जब सात तारों के समूह का अन्तिम तारा (ग्रेट बियर) एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाए। तब जहाज बनाना शुभ होता है।

शुभ दिनों में जलयान से यात्रा करना लाभदायक होता है, जब चन्द्रमा पूर्व क्षितिज पर हो, जिसकी किरणें अभी शीर्ष पर न पहुँची हो, और जब अपनी विस्थापित स्थिति में घनिष्ठ से युक्त हो तथा शुद्ध नक्षत्र, चन्द्रमा और तिथि की युति हो। तब जलयान से यात्रा शुभ मानी गई है। **(9)**

जहाज निर्माण के लिए लकड़ी–

वृक्षायुर्वेद **(10)** में कहा गया है कि चार प्रकार के वृक्ष होते है जिनकी लकड़ी को चार वर्गो में वर्गीकृत किया जा सकता है। जैसे

1. ब्रह्मजाति – वह लकड़ी जो हल्की, मुलायम और आसानी से जोड़ी जा सके।
2. केत्रजाति – वह लकड़ी जो हल्की, सख्त और जोड़ी ना जा सके।
3. वैव्य जाति – वह लकड़ी जो मुलायम और भारी होती है।
4. सूत्रजाति – वह लकड़ी जो सख्त और भारी होती है

भोज के अनुसार क्षत्रिय वर्ग की लकड़ी से बना जहाज धन और सुख लाता है। हल्की और सख्त लकड़ी से बना जहाज मुश्किल पानी से भी गुजरने में सक्षम है। दो अलग–अलग प्रकार की लकड़ी से बने जहाज न तो अच्छाई लाते और न ही आराम। वे लम्बें समय तक नहीं टिकते, सड़ जाते है, फट जाते है और पानी में डूब जाते है। **(11)**

जहाजों के प्रकार–

भोज के अनुसार जहाज के **दस प्रकार** है– कौद्र (छोटा), मध्यम (मध्यम), भीम (भयानक), कपला (आगे–पीछे चलने वाला), पाताल (आवरण सहित), अभया (खतरनाक नही), दीर्घ (लम्बा), पत्रपूता (मुड़ा हुआ या दोहरा हुआ, पत्ता का प्याला जैसा), गर्भ (अन्दर के डिब्बों वाला) और मन्थरा (वक्र)। **(12)** भोज के अनुसार जिस जहाज की लम्बाई एक राजहस्त के समान, चौड़ाई एक चौथाई तथा ऊंचाई चौड़ाई के बराबर हो, उसे बुद्धिमान लोग 'कौद्र' कहते है। **(13)** जिस जहाज की लम्बाई राजहस्त की आधी, चौड़ाई आधी, लम्बाई के और ऊंचाई एक तिहाई हो, उसे 'मध्यम' कहते है। **(14)**

दस जहाजों की लम्बाई की माप क्रमशः एक राजहस्त (राजहस्त) जाननी चाहिए, उसी में आधी वृद्धि, उसी में उतनी ही वृद्धि इत्यादि तथा उनकी ऊंचाई और चौड़ाई उक्त लम्बाई की आधी होनी चाहिए।

'भीम', 'अभया', 'गर्भ', दुर्भाग्य लाती है। **(15)** 'मन्थरा' के अलावा बाकी समुद्र में चलने वाले जहाज हैं और वे सहनीय और विशाल होते है।

नाम	लम्बाई (हाथ में)	चौड़ाई (हाथ में)	ऊँचाई (हाथ में)
क्षुद्रा/कौद्र	10	2.5	2.5
मध्या	15	7.5	5
भीमा	25	12.5	12.5
चपला	30	15	15
पटला	40	20	20
अभया	45	22.5	22.5
दीर्घा	55	27.5	27.5
पत्रपूटा	60	30	30
गर्भरा	70	35	35
मन्थरा	75	37.5	37.5

तालिका स्रोत : अली, शाकिर, (1995), युक्तिकल्पतरू : एक आलोचनात्मक अध्ययन, प्रीति प्रकाशन, आरा, पृ. 243

विशेष प्रकार के जहाज– विशेष प्रकार के जहाजों का उल्लेख भी समरांगणसूत्रधार में है। ये लोहे और तांबें की पन्नी या लोड पत्थर से बने होते है। ये दो प्रकार के होते है– 1. 'दीर्घा' (लम्बाई) और 2.'उन्नत'(ऊंचाई)। **(16)**

दीर्घा प्रकार के जहाजों के नाम एवं माप–

लम्बाई के अनुसार जिस जहाज की लम्बाई राजहस्त, चौड़ाई आंठवाँ भाग और ऊंचाई दसवाँ भाग हो, उसे 'दीर्घा' या 'दीर्घक' कहते है। **(17)** दस जहाजों के नाम दीर्घिका (लम्बा), तरोनि, लोला (इधर–उधर चलने वाला), गत्वार्द (नाशवान) गामिनि (चलता फिरता), तारि, जंघाला (तेजी से चलने वाला), प्लविनी (बहता हुआ), धारिणि (धारण करने की शक्ति), वेगिनी (वेग वाला)।

इनकी लम्बाई में प्रत्येक की लम्बाई में एक राजहस्त अंकगणितीय क्रम में वृद्धि होती है और जिसकी ऊंचाई और चौड़ाई क्रमशः एक–दसवां और एक आंठवां भाग होती है। लोला, गामिनि और प्लाविनी दुर्भाग्य लाती है। गत्वार्द भी लोला का उदाहरण अपनाता है। बाकी सभी उसी बुराईयों से घिरे हुए हैं। इन सबके अलावा वेगिनी भी सौभाग्य के विरूद्ध है।

भोज का दीर्घा प्रकार के जहाजों के बारे में दृष्टिकोण–

भोज ने (शोकयुक्त प्रकार के जहाजों के बारे में) यह भी कहा है कि यद्यपि जहाज की लम्बाई इच्छानुसार बनाई जा सकती है, परन्तु वह दो हाथ आठ, चार वेद और नौ ग्रहों की संख्या तक ही सीमित होनी चाहिए। 90, 60 और 40 हाथ से अधिक लम्बे जहाज, 'कुल', 'बल' और 'धन' का नाश करते है।

उन्नता प्रकार के जहाज के नाम एवं माप–

इसके बाद ऊंचाई के अनुसार जहाज (उन्नत) आते है। दो राजहस्त लम्बाई वाले तथा इतनी ही चौड़ाई और ऊंचाई वाले जहाज उन्नत की श्रेणी में आते है। उन्नत जहाज समाज एवं राजा के लिए सौभाग्य लाते है। उध्रा (लौकिक), अनुध्रा (गैर उन्नत), स्वर्णमुखी (सुन्दर मुख वाला) गर्भिनी (पूर्ण होने की शक्ति वाला), मन्थरा (धीमी गति वाला) ये पाँच जहाजों के नाम है जिनमें से प्रत्येक की लम्बाई में अंकगणितीय क्रम में एक राजहस्त की वृद्धि होती है। अनुध्रा और गर्विनी के साथ मन्थरा का जोड़ा अपयश होता है। **(18)**

उन्नता जहाज के प्रकारों के बारे में भोज की राय–

भोज कहतें है कि तीन अग्नि और पाँच राना (अर्थात पैंतीस हाथ) से अधिक चें जहाज समृद्धि लाते है और 50 हाथ से अधिक ऊँचे जहाज सुख देते है, किन्तु उससे दो तिहाई (50 हाथ) ऊँचे जहाज दुर्भाग्य लाते है। **(19)**

जहाज की पेंटिग–

जहाजों में प्रयुक्त होने वाली धातुओं में सोना, चाँदी, तांबा तथा इन तीनों का मिश्रण बताया गया है। ब्रह्म आदि देवताओं ने सलाह दी है कि जहाज को रंगने की कला में चार मस्तूल, तीन मस्तूल, दो मस्तूल तथा एक मस्तूल वाले जहाजों को क्रमशः सफेद, लाल, पीला तथा नीला रंग देना चाहिए। जहाज के अगले भाग पर सिंह, भैंसा, बाघ, सर्प, हाथी, पक्षी, मेंढक तथा मनुष्य जैसे आठ मुख दर्शाये जाने चाहिए किन्तु जहाज के मुख्य भाग पर सूर्य, घड़ा, दर्पण, चन्द्रमा, इन्द्र आदि हंस, मोर, तोता, सिंह, बाघ, हाथी, सर्प और दो

मधुमक्खियों का चित्र अंकित किया जाना चाहिए। जहाज को क्रमशः चौथे (सफेद), तीसरे (लाल), दूसरे (पीले) तथा पहले (नीले) रंगों से पोतने के पश्चात् ही जहाज को रंगना चाहिए।

जहाज की सजावट–

जिस जहाज की चारों भुजाएँ धातु की पतली चादरों से लिपटी हो, जिसकी लम्बाई 125 का चतुर्थांश, चौड़ाई आधी लम्बाई की हो, तथा ऊंचाई आधी चौड़ाई की हो उसे 'कमला' कहते है। अवज्ञासिका वस्त्र के आठ रंग, तीन–तीन रंगों के मिश्रण से बने हुए, श्वेत, लाल, पीले तथा काले रंग के होते है। मोतियों से जड़े हुए जहाज, नौदण्ड के छत्र के समान होते है। ऐसे मोतियों से सजे हुए जहाज सदैव सौभाग्य लाते है। जहाज में मोतियों के गुच्छों की संख्या क्रमशः दो, चार वेद, तथा छः (रस) होने चाहिए। ईमानदार लोग जहाज के सोने के हार को विजय की माला कहते है। **(20)**

केबिन वाले तीन प्रकार के जहाज–

केबिन के लिए मन्दिर शब्द का प्रयोग किया गया है। केबिन प्रकार के जहाज ब्रह्माकात्र, वैद्य और बुध्र है, जो केबिन सहित और केबिन रहित दो प्रकार के होते है। केबिन वाले जहाज तीन प्रकार के होते हैं– सर्वमंदिर, मध्यममन्दिर और अग्रमन्दिर। **(21)** जिस जहाज में एक छोर से दूसरे छोर तक केबिन होता है, उसे 'सर्वमंदिर' कहते हैं और वह राजसी खजाने, घोडों और स्त्रियों के परिवहन के लिए होता है। जिस जहाज में बीच में केबिन होता है, उसे 'मध्यममन्दिर' कहते हैं और यह वर्षा ऋतु में और राजाओं की आनन्द विहार आदि के लिए उपयुक्त होता है, तथा जिस जहाज में आगे की ओर केबिन होता है, उसे 'अग्रमन्दिर' कहते हैं और यह वर्षा रहित शुष्क ऋतु में, लम्बी यात्राओं और नौसैनिक युद्ध के लिए सुविधा जनक होता है। जिस जहाज में उसकी लम्बाई के आधे से भी कम केबिन होता है, वह तेज गति से चलता है।

भोज के अनुसार शाही जहाज की विशेषताएँ–

राजकीय जहाज अंडाकार होना चाहिए तथा उसके केबिन की ऊँचाई क्रमशः छः, आठ, नौ, दस, बारह तथा पाँच राजहस्त होनी चाहिए। राजकीय जहाज में सूर्य आदि आकाशीय पिण्डों का चित्र पूर्वोक्त धातु से अंकित होना चाहिए तथा ध्वजा और घड़े पूर्वोक्त नवदण्ड के समान होने चाहिए। राजकीय जहाज का केबिन दो प्रकार का हो सकता है – सुख–समृद्धि के लिए लकड़ी का तथा आनंद के लिए धातु का। पलंग, आसन, तथा वक्राकार छत्र तथा अन्य साज–सज्जा ऋषियों द्वारा पूर्वोक्त प्रकार से बताई गई होनी चाहिए। ये मुख्य प्रकार के जहाजों की विशेषताएँ हैं। हल्कापन, कठोरता, गतिशीलता, खोखलापन तथा सु–अनुपात, ये जहाजों के गुण माने जाते हैं। जो राजा इन सब बातों का विचार करके जहाज बनाता है, उसे सुख मिलता है। जो राजा अज्ञानतावश जहाज का निर्माण करता है, उसकी कीर्ति, बल और धन सब नष्ट हो जाते हैं।

जघण्य जलयान के अन्तर्गत पूर्वोक्त जहाजों के अतिरिक्त अन्य जहाज तथा पाश्चात्य लोगों के वे जहाज, जिनके अनेक आकार बताये गए हैं, वे 'जगण्य' कहे गए हैं। ये हैं– द्रोणी (घड़ा)–द्रोणी के आकार वाले बर्तन, घटी (पानी का बर्तन), घटी के आकार में बने बर्तन, फल या नम (फल–पात्र) लौकी और इसी तरह की अन्य चीजों से बने बर्तन, कर्म या नम (चमड़े के बर्तन) मोटे चमड़े से बने बर्तन, वृक्षयान (वृक्ष–पात्र) हल्के वृक्षों से निर्मित पात्र, तैराकी की कला घृणित श्रेणी में नहीं आती। जलयंत्र के लिए लकड़ी, चमड़ा और लोहा आदि धातु का उपयोग पार्थिव तत्व बनाता है, अन्य जल और उसका अपना जल ऊपर, नीचे और तिरछी दिशा में उसका अपना जलीय तापन आदि, जैसा कि पूर्वोक्त है, उसका अग्नि तत्व और वातानुकूलन, अर्थात एकत्रित करना (संग्रह करना), प्रदान करना (दत्त करना), भरना (पूरित करना) और प्रेरित करना (प्रोतिनोदित करना) वायु तत्व बनाते हैं।

यद्यपि यहाँ यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा गया है कि यह यंत्र जलयंत्र किसी नाव या जहाज को संदर्भित करता है, लेकिन संबंधित वायु यंत्र के संदर्भ से, जिसका वर्णन निस्संदेह उड़ने वाले यंत्र (वायु–जहाज) को संदर्भित करता है, जल यंत्र का वर्णन नाव और जहाज को संदर्भित करने के लिए भी माना जा सकता है या अधिक संभावना हो कि पानी की सतह के नीचे चलने वाले शिल्प (पनडुब्बी) को संदर्भित करता है क्योंकि हवा का संग्रह, भण्डारण आदि से ऐसा प्रतीत होता है।

उपसंहार

युक्तिकल्पतरू का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि भारतीय ज्ञान परम्परा केवल धार्मिक अथवा दार्शनिक चिन्तन तक सीमित नहीं थी, बल्कि उसमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण और तकनीकि व्यावहारिकता का भी समावेश था। यह ग्रन्थ तत्कालीन समाज की बौद्धिक उन्नति और शिल्प कला की विकसित अवस्था का दर्पण प्रतीत होता है। ग्रन्थ में वर्णित विभिन्न तकनीकि विधियाँ इस बात का प्रमाण है कि पूर्वमध्यकालीन भारत में

निर्माण कला, जल परिवहन तथा यान्त्रिक ज्ञान व्यवस्थित रूप से विकसित थे। विशेष रूप से जलयान सम्बन्धी विवरण यह संकेत देते है कि नदियों और समुद्री मार्गों का उपयोग व्यापार, यात्रा तथा सांस्कृतिक सम्पर्क के लिए महत्वपूर्ण था। इससे उस काल के आर्थिक और सामाजिक संरचना का भी अनुमान लगाया जा सकता है।

सन्दर्भ सूची

1. अली, शाकिर, *युक्तिकल्पतरू : एक आलोचनात्मक अध्ययन,* प्रीति प्रकाशन, आरा, बिहार, पृ0 4
2. *ऋग्वेद 1.25.7,* शर्मा, श्रीराम, (1965), हिन्दी अनुवाद युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि मथुरा,
3. *अष्टाध्ययी :* (2014), हिन्दी अनुवादित झा, नरेश, सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी,
4. *अर्थशास्त्र :* अधिकरण 02, (1984), हिन्दी अनुवादित गौरेला, वाचस्पति, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी
5. *युक्तिकल्पतरू : राजा भोज,* (2008), अनु. पुरोहित, भगवतीलाल, प्रतिभा प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0
6. *युक्तिकल्पतरू, 224.88,* अली, शाकिर, *युक्तिकल्पतरू : एक आलोचनात्मक अध्ययन,* प्रीति प्रकाशन, आरा, बिहार, पृ0 247–48
7. मोतीचन्द्र, (1953), *सार्थवाहः प्राचीन भारत की पथ पद्धति,* बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, पृ0 212
8. शुक्ल, दिजेन्द्र नाथ (1965), अनु. *समरांगरण सूत्रधार : राजा भोज,* चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, पृ0 175–85
9. शुक्ल, दिजेन्द्र नाथ (1965), अनु. *समरांगरण सूत्रधार : राजा भोज,* चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, पृ0 140–55
10. *वृक्षायुर्वेद : सुरपाल,* (2010), अनु. जुगनू, श्रीकृष्ण, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, पृ0 227
11. *युक्तिकल्पतरू, 224.86*–87, पृ0 241
12. *युक्तिकल्पतरू, 225.92,* पृ0 242
13. *युक्तिकल्पतरू, 224.90,* पृ0 242
14. *युक्तिकल्पतरू, 225.91,* पृ0 242
15. *युक्तिकल्पतरू, 225.94,* पृ0 242
16. पुरोहित, भगवतीलाल (2008), अनु. *युक्तिकल्पतरू : राजा भोज,* प्रतिभा प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 227–28
17. पुरोहित, भगवतीलाल (2008), अनु. *युक्तिकल्पतरू : राजा भोज,* प्रतिभा प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 227
18. मुखर्जी, आर. के. (1912), *ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन शिपिंग,* लॉगमैन्स ग्रीन एण्ड कार्पोरेशन, बाम्बे, पृ0 24
19. पुरोहित, भगवतीलाल (2008), अनु. *युक्तिकल्पतरू : राजा भोज,* प्रतिभा प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 224
20. अरूणाचलम, बी. (2004), *शिप एण्ड शिपिंग इन एन्शियण्ट इण्डिया,* मेरिटाइम हिस्ट्री सोसायटी, बम्बई, पृ0 112
21. *युक्तिकल्पतरू, 228.20–23,* पृ0 247

पूर्वोत्तर भारत में हिंदी की स्थिति : एक अध्ययन

रंजेश गुप्ता*

सारांश

पूर्वोत्तर भारत वैविध्य की दृष्टि से एक विलक्षण क्षेत्र है। प्राकृतिक सुषमा, जैव विविधता, लोक-साहित्य एवं लोक-संस्कृति में अनुपमेय है। पहाड़ों, पर्वतों, नदियों झरनों, वनों से व्याप्त यह एक रमणीय एवं दुर्गम क्षेत्र है। अपनी अनूठी संस्कृति, हस्तशिल्प और प्राकृतिक सुंदरता के लिये जाना जाता है। यहाँ के मूलनिवासी (असमीया तथा विभिन्न जनजाति के लोग) सहज-सरल स्वभाव के शांतिप्रिय एवं अतिथि परायण होते हैं। पूर्वोत्तर भारत में हिंदी एक महत्वपूर्ण भाषा है और यहाँ के विभिन्न राज्यों में विभिन्न रूपों में बोली जाती है। यहाँ हिंदी का प्रयोग संबंधित राज्य की अन्य भाषाओं के साथ मिश्रित भाषा के रूप में किया जाता है। विभिन्न भाषाओं के प्रभाव के कारण यहाँ की हिंदी अनूठी है। भाषा की दृष्टि से पूर्वोत्तर भारत अत्यंत समृद्ध है, इसका अंदाजा इसी से लगया जा सकता है कि यहाँ 220 से अधिक भाषाएँ – बोलियाँ अस्तित्व में हैं |

बीज शब्द : असम, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, मणिपुर, मिजोरम, त्रिपुरा, नागालैण्ड, सिक्किम, हिंदी, शिक्षा, सरकारी काम-काज, सामाजिक उपयोग, व्यक्तिगत उपयोग, भाषा संगठन/ संस्थाएं, साहित्य-कला, राजनीति, व्यवसाय

पूर्वोत्तर भारत से आशय, भारत के सर्वाधिक पूर्वी क्षेत्रों से है जिसमें कुल आठ भारतीय राज्य - असम, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, मणिपुर, मिजोरम, त्रिपुरा, नागालैण्ड और सिक्किम शामिल हैं। सिक्किम के अतिरिक्त बाकी एक साथ जुड़े राज्यों को "सात बहनों" के नाम से भी जाना जाता है।[1] इन राज्यों में हिंदी की स्थिति का अध्ययन, विश्लेषण और निष्कर्ष के लिये निम्नलिखित आठ आयामों :- शिक्षा, सरकारी काम-काज, सामाजिक उपयोग, व्यक्तिगत उपयोग, भाषा संगठन/ संस्थाएं, साहित्य और कला, राजनीति तथा व्यवसाय को आधार के रूप में परिगणित किया गया है | इन राज्यों में हिंदी एक महत्वपूर्ण भाषा है और यहाँ के विभिन्न राज्यों में विभिन्न रूपों में बोली जाती है। यहाँ हिंदी का प्रयोग संबंधित राज्य की अन्य भाषाओं के साथ मिश्रित भाषा के रूप में किया जाता है। विभिन्न भाषाओं के प्रभाव के कारण यहाँ की हिंदी अनूठी है। हिंदी लेखन में रुचि रखने वाली असम की लेखिका जयश्री शर्मा ज्योति के शब्दों में कहें तो –"पूर्वोत्तर के आठों प्रदेशों ने, हिंदी भाषा को अपनाया है। अपनी भाषाओं के संग रख, इसे प्रेम से गले लगाया है।।"[2]

पूर्वोत्तर भारत नाना धर्मों, जातियों, सभ्यताओं और संस्कृतियों का संगम स्थल है | यहाँ की हिंदी में असामिया का माधुर्य है, बांग्ला की छौंक है, नेपाली की कोमलता है, मिज़ो का सौरभ है, बोड़ो, खासी, जयंतिया, गारो का पुष्प-पराग है, आदी, आपातानी, मोंपा भाषा की सरलता है। वहाँ के लोगों में हिंदी के प्रति रुझान को निम्नलिखित सारणी में संकलित आंकड़ो के माध्यम से अवलोकित किया जा सकता है -

हिंदी की स्थिति	नागालैंड	असम	अरुणाचल प्रदेश	मेघालय	मणिपुर	मिजोरम	त्रिपुरा	सिक्किम
शिक्षा (विद्यालय महाविद्यालय विश्वविद्यालय)	1939+ 107+ 1	5000+ 720+ 11	403+ 75+ 9	1400+ 109+ 10	2842+ 160+ 9	819+ 64+ 2	3000+ 15+ 3	232+ 30+ 5
सरकारी कामकाज (राज्य और केंद्र सरकार के कार्यालय)	`ग` क्षेत्र	`ग` क्षेत्र	`ग` क्षेत्र	`ग` क्षेत्र	`ग` क्षेत्र	`ग` क्षेत्र	`ग` क्षेत्र	`ग` क्षेत्र
सामाजिक उपयोग (संपर्क/सेतु भाषा के रूप में हिंदी का उपयोग)	4%	9%	9%	1%	1.2%	1%	2.1%	5%
व्यक्तिगत उपयोग (हिंदी भाषा और साहित्य का विशेष अध्ययन और अपने आजीविका का साधन के रूप में प्रयोग)	1000+	6000+	500 +	1500+	2000+	800+	3050+	250+

* टी.जी.टी. हिंदी, जवाहर नवोदय विद्यालय, अमीरपुर, बडायला, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश
पिन : 245304, मो. 9452333354, ई–मेलः ranjesh.gupta512@gmail.com

भाषा संगठन/ संस्थाएं (हिंदी को समर्पित संगठन/ संस्थाएं)	1	4	1	1	1	1	1	1
साहित्य और कला (साहित्य, पत्र- पत्रिकओं और कला में हिंदी का प्रयोग)	प्रगति जारी	प्रगति जारी	प्रगति जारी	प्रगति जारी	प्रगति जारी	प्रगति जारी	प्रगति जारी	प्रगति जारी
राजनीति (राजनीतिक पार्टियों और सस्थाओं में हिंदी का प्रयोग)	प्रगति जारी	प्रगति जारी	प्रगति जारी	प्रगति जारी	प्रगति जारी	प्रगति जारी	प्रगति जारी	प्रगति जारी
व्यवसाय (उद्योगों और बाजारों में हिंदी का प्रयोग)	प्रगति जारी	प्रगति जारी	प्रगति जारी	प्रगति जारी	प्रगति जारी	प्रगति जारी	प्रगति जारी	प्रगति जारी

पूर्वोत्तर भारत वैविध्य की दृष्टि से एक विलक्षण क्षेत्र है। प्राकृतिक सुषमा, जैव विविधता, लोक-साहित्य एवं लोक-संस्कृति में अनुपमेय है। पहाड़ों, पर्वतों, नदियों झरनों, वनों से व्याप्त यह एक रमणीय एवं दुर्गम क्षेत्र है। अपनी अनूठी संस्कृति, हस्तशिल्प और प्राकृतिक सुंदरता के लिये जाना जाता है। यहाँ के मूलनिवासी (असमीया तथा विभिन्न जनजाति के लोग) सहज-सरल स्वभाव के शांतिप्रिय एवं अतिथि परायण होते हैं। ये बातें यहाँ की भाषा पर भी लागू होती हैं, यहाँ जितनी प्राकृतिक – सांस्कृतिक विविधता मौजूद है उतनी ही भाषिक विविधता भी व्यप्त है | यहाँ की भाषओं–बोलियों में इतनी विविधता है कि एक क्षेत्र के लोग दूसरे क्षेत्र की भाषा से उतने ही अपरिचित हैं जितने हिंदी से, ऐसे में हिंदी वहाँ संपर्क भाषा के रूप में, साहित्य और शिक्षा की भाषा के रूप प्रवाहमान है | पूर्वोत्तर भारत में हिंदी की स्थिति का राज्यवार अध्ययन निम्नवत किया जा सकता है –

नागालैंड में हिंदी की स्थिति

एक समय था जब नागालैंड में हिंदी के प्रति लोगों में दुर्भावना थी किन्तु अब "पूरब का स्विटजरलैंड कहे जाने वाले नगालैंड में हिंदी पढ़ाने और बोलने पर कोई पत्थर नहीं मारता और न ही थूकता है।"[3] यहां लोगों को धीरे-धीरे हिंदी भी रास आने लगी है। जो देश की एकता और अखंडता के लिए अच्छा संकेत है। नगालैंड के दीमापुर के राष्ट्रभाषा हिंदी शिक्षण संस्थान के प्राचार्य एम.पी. तेमजन जामीर ने 1988 में जब नागा लोगों को हिंदी पढ़ाने का अभियान शुरू किया तो उनके समाज के लोगों ने ही एक तरह से उनका बहिष्कार शुरू कर दिया। तब कई बार हिंदी पढ़ाने की वजह से उन पर पथराव हुआ। नागा लोग उन्हें देखकर थूकते थे। इन्होनें अपना सम्पूर्ण जीवन नागालैंड में हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिये समर्पित कर दिया। जामीर, हिन्दी के साधक एवं महात्मा गांधी के परम भक्त हैं। श्री जामीर आतंकवादियों के कोप का भाजन होकर भी हिन्दी का प्रचार-प्रसार का कार्य निष्ठापूर्वक करते रहे हैं। विद्या भारती, नागालैंड के कुछ वर्ष अध्यक्ष भी रहे हैं। राष्ट्रीय स्तर पर अनेक पुरस्कारों से सम्मानित हुए हैं, जिनमें से भारत के राष्ट्रपति द्वारा 'पद्मश्री', 'भाऊराव देवरस राष्ट्रीय सम्मान' भी है।

2011 की जनगणना के आँकड़ों के आधार पर, नगालैंड में प्रभावी रूप से 14 भाषाएँ और 17 बोलियाँ बोली जाती है|[4] अर्थात नागालैंड की एक समृद्ध भाषिक परंपरा है | नागामीज वहाँ की आम भाषा और अंग्रेजी राजभाषा है, हिंदी का उपयोग केंद्र सरकार के कार्यालयों, केन्द्रीय विद्यालयों, नवोदय विद्यालयों, एकलव्य मॉडल स्कूलों और विभिन्न निजी संस्थानों में औपचारिक रूप से किया जाता है| 1939 से अधिक विद्यालयों, 107 महाविद्यालयों और 1 विश्वविद्यालय के माध्यम से नागालैंड में हिंदी की औपचारिक शिक्षा प्रगति पथ अग्रसर है | नगालैंड के 4 % से अधिक लोग हिंदी का इस्तेमाल संपर्क भाषा के रूप में करते है और 1000 से अधिक लोग हिंदी में विशेषज्ञता रखते हैं | राष्ट्रभाषा हिंदी शिक्षण संस्थान, दीमापुर एवं नागालैंड विश्वविद्यालय के नेतृत्व में हिंदी वहाँ निरंतर फलीभूत हो रही है | राजनीति, साहित्य-कला और व्यवसाय के क्षेत्र में हिंदी संप्रेषण की पसंदीदा भाषा बन रही है |

नगालैण्ड में अनेक जनभाषाएं बोली जाती हैं। हिंदी प्रचार के लिए यहां 'नागालैण्ड राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' कार्यरत है। यहां हिंदी के मेल-जोल से तैयार समन्वित भाषा का चलन बढ़ रहा है जिसको नागालैण्ड के लोग 'तेंजीदिए' के नाम से पुकारते हैं और जिसको अंग्रेजी के ग्रंथों की देखादेखी 'नागामीज़' कहा जाता है। इसमें मौसम, प्रार्थना, अंग आदि अनेक हिंदी शब्दों का प्रयोग होता है तथा हिंदी फिल्मों के संवादों तथा गानों में प्रयुक्त शब्दों का चलन बढ़ता जा रहा है। केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, नगालैण्ड के हिंदी अध्यापकों के लिए सन् 1972 से विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित कर रहा है जिसमें प्रति वर्ष नगालैण्ड से बीस से तीस हिंदी अध्यापक आगरा आते हैं तथा प्रशिक्षण के बाद आगरा से अपने यहां 'हिन्दी के राजदूत' बनकर लौटते हैं। धीरे धीरे नगालैण्ड के अंगामी, रेंगमा, लोथा, चाखेसाङ, फोमा आदि जनभाषाओं के बोलने वाले देवनागरी लिपि को अपना रहे हैं।

असम में हिंदी की स्थिति

पूर्वोत्तर में हिन्दी का औपचारिक रूप से प्रवेश वर्ष 1934 में हुआ, जब महात्मा गांधी 'अखिल भारतीय हरिजन सभा' की स्थापना हेतु असम आये। उस समय गड़मूड़ (माजुली) के सत्राधिकार (वैष्णव धर्मगुरू) एवं स्वतंत्रता सेनानी श्री श्री पीताम्बर देव गोस्वामी के आग्रह पर गांधी जी संतुष्ट होकर 'बाबा राघव दास जी' को हिन्दी प्रचारक के रूप में असम भेजा।

वर्ष 1938 में 'असम हिन्दी प्रचार समिति' की स्थापना गुवाहाटी में हुई। यह समिति आगे चलकर 'असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति'[5] बनी। आम लोगों में हिन्दी भाषा तथा साहित्य के प्रचार-प्रसार करने हेतु- प्रबोध, विशारद, प्रवीण, आदि परीक्षाओं का आयोजन इस समिति के द्वारा होता आ रहा है। केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, गुवाहाटी के द्वारा हिन्दी शिक्षकों और हिन्दी प्रचारकों के लिये प्रशिक्षण दिया जाता है।

हिंदी असम में एक महत्वपूर्ण विद्यालयी भाषा है और यहाँ के विद्यालयों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में हिंदी के पाठ्यक्रम उपलब्ध हैं। छात्र हिंदी की पढ़ाई कर सकते हैं, लेकिन यह सामाजिक और व्यक्तिगत उद्देश्यों के लिए होती है, शिक्षा के अधिकांश क्षेत्रों में असमीज़ ही प्रचलित है। शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा संचालित केन्द्रीय विद्यालयों, नवोदय विद्यालयों एवं जनजातीय कार्य मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा संचालित एकलव्य मॉडल स्कूलों में हिंदी की औपचारिक शिक्षा प्रदान की जाती है साथ ही विभिन्न निजी विद्यालय एवं संस्थान भी इस कार्य में अपना योगदान दे रहे हैं। आंकड़ों के आधार पर देखा जाय तो 5000 से अधिक विद्यालय, 720 से अधिक महाविद्यालय और 11 विश्वविद्यालय असम में हिंदी के प्रचार प्रसार में निरंतर लगे हुए हैं।

सरकारी दस्तावेजों, प्रेस कॉन्फ्रेंसों और अन्य सरकारी संवादों में सामान्यतः असमीज़ और अंग्रेजी का प्रयोग होता है। राजभाषा प्रयोग क्षेत्र वर्गीकरण के आधार पर असम 'ग' क्षेत्र के अंतर्गत आता है जहाँ हिंदी का प्रयोग केंद्र सरकार के कार्यालयों में 65% सुनिश्चित है। असम के 9% से अधिक लोग हिंदी को अपनी सामाजिक जरूरतों के लिए इस्तेमाल करते हैं, विशेषतौर से जब वे हिंदी भाषी लोगो से संप्रेषण कर रहे होते हैं। यहाँ 6000 से अधिक लोग हिंदी का कामकाजी ज्ञान, उच्च शिक्षा या व्यवसायिक प्रशिक्षण प्राप्त कर पूरी निष्ठा से हिंदी की सेवा में लगे हुए हैं।

हिंदी के प्रतिष्ठित संगठनों का असम में एक प्रमुख भूमिका है, जो हिंदी भाषा की संरक्षण और प्रशासनिक उपयोग को प्रोत्साहित करते हैं। जैसे -असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, गुवाहाटी, असम राज्य राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, जोरहाट, राजकीय हिन्दी शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, गुवाहाटी, राज्य व केन्द्र सरकार के कार्यालय, सिनेमा, मीडिया व विभिन्न टेलिविजन चैनल, विद्या भारती के विद्यालय, हिन्दी विभाग, गुवाहाटी विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग, कॉटन विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग, तेजपुर विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग, सिलचर विश्वविद्यालय आदि। असम के गुवाहाटी से प्रकाशित समाचार पत्र 'दैनिक पूर्वोदय', 'पूर्वांचल प्रहरी', 'प्रातः खबर', 'सेंटिनल', सिचलर से प्रकाशित 'प्रेरणा भारती' आदि की हिन्दी के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका है। जैसे –जैसे पूर्वोत्तर का संपर्क देश के अन्य हिस्सों से बढ़ता जा रहा है वैसे –वैसे हिंदी, यहाँ की सामाजिक, सांस्कृतिक और आधिकारिक भाषा असमीज़ के साथ जन संपर्क की भाषा बनती जा रही है।

असम में बड़ी संख्या में राजस्थान, हरियाणा से आये हुए व्यापारी वर्ग, उत्तर प्रदेश, बिहार से आये हुए कुछ कर्मचारी एवं लाखों की संख्या में आये मजदूर वास करते हैं। इनमें से प्रायः सभी लोगों की हिन्दी मातृभाषा या रोजमर्रा जीवन में उपयोग करने वाली भाषा है। अनगिनत लोगों ने अपनी बुद्धि, मेहनत के बल पर असम के सामाजिक, आर्थिक क्षेत्रों में शक्तिशाली स्थान बनाया हुआ है। अपनी जीविका कमाने के साथ-साथ हिन्दी के संरक्षण तथा संवर्धन में अत्यंत सराहनीय प्रयास किये है। इसीलिए अनेक बार राष्ट्र विरोधी विभिन्न आतंकवादियों ने इन हिन्दी भाषी लोगों पर आक्रमण किये, सैकड़ों लोगों को मौत के घाट उतारकर यहाँ से पलायन करने के लिये मजबूर किये। इनके अलावा सैकड़ो चाय बगानों में कार्यरत लाखों संख्या में मजदूर जो मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड से आये हैं, उनमें प्रायः सभी लोग अपनी-अपनी बोली के साथ-साथ हिन्दी का उपयोग करते हैं। इस तरह देखा जाय तो असम के अधिकांश व्यवसायिक प्रतिष्ठानों में कार्यरत लोग हिंदी भाषी क्षेत्रों से हैं जो काफी समय से वहाँ रहते-रहते हिंदी और असमीज़ दोनों के प्रयोग में दक्ष हैं।

अरुणाचल प्रदेश में हिंदी की स्थिति

अरुणाचल प्रदेश एक ऐसा राज्य है, जिसकी सीमाऐं तिब्बत, म्यानमार देशों के साथ प्रायः 1300 कि.मी. व्याप्त है। 30 से अधिक विभिन्न जनजातियों के लोग यहाँ वास करते हैं। एक उत्सुकता की बात यह है कि अरुणाचल प्रदेश में लोगों के बीच सम्पर्क भाषा हिन्दी है। यद्यपि सरकारी कामकाज अंग्रेजी में चलता है परंतु नई पीढ़ी के लोगों में हिन्दी ही ज्यादा प्रचलित है। उस समय के 'नेफा' में वर्ष 1956 में प्रशासनिक आदेश (केन्द्र सरकार) के द्वारा हिन्दी को विद्यालयों में पढ़ाना अनिवार्य कर दिया गया। डॉ. जोराम यालम नाबम द्वारा रचित कहानी संग्रह 'साक्षी है पीपल' यह किसी अरुणाचली साहित्यकार द्वारा हिन्दी में किया गया पहला सृजनात्मक प्रयास है। इस पुस्तक में समाज में व्याप्त अरूणाचली स्त्री के जीवन संघर्षों को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है। यालम जी का संबंध अरुणाचल की प्रमुख जनजाति 'निशी' से है। ईटानगर के युवाकवि एवं अध्यापक श्री तारो सिंदिक व डॉ. (श्रीमती) जोराम आन्या भी हिन्दी के प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं।

अरुणाचल प्रदेश की टंबोम रिबा बताती हैं, "हिंदी हमारे लिए सबसे महत्वपूर्ण भाषा है. यह हमारी राष्ट्रीय भाषा है. यह एक दूसरे को जोड़ने में मदद करती है और जब हम बाहर जाते तो हम केवल हिंदी के माध्यम से ही संवाद करते हैं. यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है. असम के पास उनकी अपनी भाषा है और अरुणाचल में हमारे लिए यह हिंदी है|"[6]

मेघालय में हिंदी की स्थिति

मेघालय में खासी, जयंतिया और गारो तीन प्रमुख आदिवासी समुदाय के अतिरिक्त तिवा , राभा , हाजोंग, लाखेर, कार्बी , बाइते, कुकी आदि जनजातियों के लोग निवास करते हैं । मेघालय राज्य भाषा अधिनियम 2004 के अनुसार अंग्रेजी यहाँ की राजभाषा है। मेघालय में खासी भाषा बोलने वालों की संख्या सबसे अधिक है। यहाँ लगभग 48 प्रतिशत लोग खासी और 32 प्रति शत लोग गारो भाषा बोलते हैं। इसके अतिरिक्त बांग्ला , नेपाली , हिंदी , मराठी और असमिया भाषा भी बोली जाती है। यहाँ के लोग दैनिक व्यवहार में एक प्रकार की अत्यंत सरल हिन्दी का प्रयोग करते हैं जिसे वहाँ 'बाज़ार- हिन्दी' नाम से अभिहित करते हैं।

हिन्दी संस्थान शिलांग की स्थापना 1976 में हुई थी। 1978 में यह केंद्र गुवाहाटी स्थानांतरित कर दिया गया। पुन: इसकी स्थापना वर्ष 1987 में की गई। केंद्रीय शिक्षा मंत्री श्री धर्मेन्द्र प्रधान जी ने 21 नवंबर 2021 को मेघालय में केंद्रीय हिंदी संस्थान के नवनिर्मित भवन का उद्घाटन किया |[7] यह संस्थान हिंदी के शिक्षकों और भाषा सीखने और शोध करने के इच्छुक लोगों के लाभ के लिए काम करेगा और मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम राज्यों की जरूरतों को पूरा करेगा। यह संस्थान हिन्दी के प्रचार-प्रसार के अंतर्गत हिन्दी शिक्षकों के लिए नवीकरण (तीन सप्ताह का) पाठ्यक्रम और असम रायफ़ल्स के विद्यालयों के हिन्दी शिक्षकों, केंद्र सरकार के कर्मचारियों एवं अधिकारियों को हिन्दी का कार्य साधक ज्ञान कराने के लिए 2-3 सप्ताह का हिन्दी शिक्षणपरक कार्यक्रम संचालित करता है।

मणिपुर में हिंदी की स्थिति

मणिपुर में मैतै के अतिरिक्त 29 आदिवासी समुदाय रहते हैं। यहाँ के निवासियो को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है-(1) मैतै अथवा मणिपुरी और (2)आदिवासी । आदिवासी समुदायों को भी दो वर्गों में में विभक्त किया जा सकता है– नागा समूह के आदिवासी और कुकी –चीन समूह के आदिवासी।[8] मणिपुर में मणिपुरी अथवा मैतै आम बोलचाल की भाषा है। यहाँ के लगभग 54 % लोग मैतै बोलते हैं। मैतै इस राज्य की राजभाषा एवं संपर्क भाषा है। यहाँ वर्ष 1928 में 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के द्वारा हिन्दी का प्रचार-प्रसार प्रारम्भ हुआ, वर्ष 1953 में मणिपुर हिन्दी परिषद की स्थापना हुई। तब से मणिपुर में लाइयुम ललित माधव शर्मा, टी.वी. शास्त्री, फु. गोकुलानंद, एन. तोम्बीसिंह, हेमाम नीलमणि सिंह, अरिबम पंडित राधा मोहन शर्मा, एस. नीलवीर शर्मा शास्त्री, अरिबम घनश्याम शर्मा, राधागोविंद थोङाम, द्विजमणि देव शर्मा जैसे विभूतियों के द्वारा हिंदी का प्रचार –प्रसार जारी है |

2842 से अधिक विद्यालय 160 से अधिक महाविद्यालय और 9 विश्वविद्यालयों में यहाँ औपचारिक रूप से हिंदी का पठन –पठन हो रहा है, पूरी जनसंख्या के 1.2 % लोग हिंदी का प्रयोग संपर्क भाषा के रूप में करते हैं तथा 2000 से अधिक लोग हिंदी में दक्ष हैं |

मिजोरम में हिंदी की स्थिति

मिजोरम की राजभाषा मिज़ो है। मिज़ो भाषा मिज़ोरम और उसके आसपास के क्षेत्रों जैसे असम, त्रिपुरा और मणिपुर के कुछ हिस्सों में बोली जाती है। हिंदी यहाँ सेतु भाषा के रूप में स्थापित है |

मिज़ोरम की डॉ. इंजीनियरी जेनी, हिंदी की प्रोफेसर हैं, इन्होंने 'पूर्वांचलीय हिंदी साहित्य' पर शोध कार्य किया है तथा इनका हिंदी-मिज़ो शब्दकोश प्रकाशित हो चुका है। हिंदी के प्रचार की संस्था का नाम 'मिज़ोरम हिंदी प्रचार सभा, आइजोल' है। यहाँ के आर. एल. थनमोया एवं ललथलमुआनो हिंदी-मिजो परियोजना पर कार्य कर रहे हैं।

त्रिपुरा में हिंदी की स्थिति

यहाँ 3000 से अधिक विद्यालयों, 15 से अधिक महाविद्यालयों और 3 विश्वविद्यालयों में हिंदी का पठन –पाठन चल रहा है। रामेन्द्र कुमार पाल ने हिन्दी प्रचारक के रूप में उल्लेखनीय कार्य किये हैं। डॉ. नरेन्द्र देव वर्मा तथा खोमतिया देव वर्मा हिन्दी-कॉकबराक परियोजना पर कार्य कर रहे हैं। डॉ. मिलन राणी जामातिया, त्रिपुरा विश्वविद्यालय भी विगत कुछ वर्षों से हिन्दी प्रचार— प्रसार का अच्छा काम कर रही हैं।

सिक्किम में हिंदी की स्थिति

सिक्किम सरकार ने प्रदेश की 11 भाषाओँ को राजभाषा घोषित किया है– नेपाली, लेपचा, भूटिया, तमांग, लिंबू, नेवारी, खम्बुराई, गुरुंग, मांगर, शेरपा और सुनवार | नेपाली सिक्किम की प्रमुख भाषा है। इसे पहाड़ी और गोरखाली भी कहा जाता है। इसकी लिपि देवनागरी है। अतः यहाँ भी हिंदी बोलने समझने वालो की संख्या कम नहीं है |

2016 से यहाँ के अहिंदी भाषी साहित्यकारों एवं राजभाषा प्रेमियों ने पूर्वोत्तर हिंदी साहित्य अकामदी के जरिए भाषा विकास एवं विस्तार के लिए विशेष मुहिम छेड़ी है। अकादमी ने शहर के डीपीएच रोड स्थित जनता भवन में हिंदी भाषा एवं साहित्य संवर्धन सम्मेलन का आयोजन किया। जिसमें हिंदी भाषा के व्यख्याकारों, साहित्यकारों तथा राष्ट्र भाषा प्रेमियों ने भविष्य में भी इस तरह के कार्यक्रमों के जरिए राष्ट्रभाषा हिंदी के विकास का बीड़ा उठाया है। इस अवसर पर आयोजित

सम्मेलन के बतौर सभाध्यक्ष के रूप में भाषाविद एवं नेपाली भाषा के प्रतिष्ठित लेखक एवं साहित्यकार प्राज्ञ रुद्र पौड्याल ने राष्ट्र भाषा के विकास के माध्यम से सिक्किम को मूलधारा में शामिल करने की इस पहल को प्रशंसनीय बताया।[9] सिक्किम विश्वविद्यालय से निकलने वाली 'राजभाषा सिक्किम' अर्धवार्षिक पत्रिका भी इसी दिशा में एक पहल है |

विश्लेषण

पूर्वोत्तर भारत में हिंदी की स्थिति के उपरिवर्णित अध्ययन को सारगर्भित रूप में देखा जाय तो यहाँ पूर्णतः अहिन्दी भाषा क्षेत्र होने के कारण ग्रहण योग्यता को लेकर समस्या आती है। शुद्ध हिन्दी बोलने के दबाव की वजह से गैर हिन्दी भाषी सार्वजनिक मंच पर हिन्दी बोलने में कतराते हैं। यहाँ जिन भाषा परिवारों (तिब्बत-बर्मी परिवार) की भाषाऐं प्रचलित हैं, उनमें से हिन्दी का दूर-दूर तक संबंध नहीं है। अवश्य ही असमीया भाषा इस संदर्भ में अपवाद है। असमीया भाषा में अत्यधिक शब्द संस्कृत के होने के कारण हिन्दी सीखने व समझाने में कुछ सुविधा होती है। असम के अलावां अन्य पूर्वोत्तर राज्यों में पिछले दो दशकों में हिंदी क्षिप्र गति से प्रवाहित हुई है, इसका कारण नई पीढ़ी का हिंदी के प्रति रुझान और तकनीकि पहुँच है |

निष्कर्ष

पूर्वोत्तर भारत के लोग कुछ वर्ष पूर्व तक अल्प जागरूक और पिछड़े थे। इसका कारण भौगौलिक अवस्थिति, आतंकवाद, यातायात की कम सुविधा, अधिक वर्षा (मौसम), लोगों की जीवन शैली में अल्प संतुष्ट स्वभाव था किन्तु वर्तमान शिक्षित युवा वर्ग अपनी-अपनी जनजातियों के उत्तरण के लिए साहित्य निर्माण में लगा हुआ है। विविध साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक संस्थाओं की स्थापना के माध्यम से वे अपनी जाति को आगे बढ़ाने हेतु प्रयत्नशील हैं। इसी चेतना के चलते वे अपनी भाषा, साहित्य, सांस्कृतिक कार्यक्रमों से लोगों को देश की मूलधारा से जोड़ने के लिए तत्पर हैं। उनके इस प्रयास में हिन्दी सहायक की भूमिका में खड़ी है । पर्यटन क्षेत्र, औद्योगिक क्षेत्र, मीडिया, यातायात सुविधा बढ़ने से नई पीढ़ी में दूर-दूर तक भ्रमण करने की मानसिकता ने हिन्दी का दैनंदिन जीवन में उपयोग बढ़ाया है।अनुवाद के रूप में विविध लिपि रहित भाषाओं में छिपे हुए मौखिक साहित्य, राति-नीति, आचार-विचार आदि को इस क्षेत्र से राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक पहुँचाने में हिन्दी एक सबल माध्यम बनी है। हिन्दी का प्रचार-प्रसार तथा उसकी लोकप्रियता एवं व्यावहारिकता टी.वी. (धारावाहिक, विज्ञापन), सिनेमा, आकाशवाणी, पत्रकारिता, विद्यालय, महाविद्यालय तथा उच्च शिक्षा में हिन्दी भाषा के प्रयोग द्वारा बढ़ रही है। कई पत्रिकाएं ऐसे प्रदेशों से प्रकाशित हो रही हैं जिसमें पूर्वोत्तर राज्यों के लेखक अपने अपने राज्य में प्रचलित लोक कथाओं, लोकगीतों आदि का हिंदी में अनुवाद कर रहे हैं तथा मौलिक सर्जन भी कर रहे हैं। इसका परिणाम यह है कि वे अपने अपने क्षेत्र की जनभाषा को देवनागरी लिपि में लिखने के अभ्यस्त हो रहे हैं और उनके साहित्य के हिंदी में अनुवाद होने से उनका साहित्य जिसे एक विशेष क्षेत्र के ही पाठक मिलते थे अब पूरे भारत वर्ष के पाठक पढ़ सकते हैं। पूर्वोत्तरीय भाषाओं को हिंदी ने न केवल जुबान दी है अपितु सैकड़ो लाखों कान भी उनकी मीठी बोली का रसास्वादन करने हेतु उपलब्ध कराए हैं। एक भाषा का साहित्य दूसरी भाषा में अनुवाद करके रसास्वादन करना आसान है। इससे एक-दूसरे की भाषा, कला-संस्कृति, रीति-रिवाज को जानना समझना सुगम होता है। हिंदी भाषा इस क्षेत्र में पूर्वांचल के लिए अनुवाद की भाषा बनकर महत्वपूर्ण कदम उठा रही है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि पूर्वोत्तर की भाषाओं के विकास में हिंदी की अहम भूमिका रही है। हिंदी वह सेतु है जिसने पूर्वोत्तर को भीतर और बाहर दोनों जगहों पर जोड़ा है।

सन्दर्भ सूची

1. https://hi.wikipedia.org
2. https://www.ugtabharat.com
3. https://www.bhaskar.com
4. https://www.drishtiias.com
5. https://bharatdiscovery.org
6. https://www.aajtak.in
7. https://pib.gov.in
8. https://jankriti.com
9. https://www.jagran.com
10. Concern state Wikipedia

ঔৠ

दलित साहित्य और मुर्दहिया

बैजू कुमार राम*
डॉ. रामदुलार साहनी**

शोध-सार :

दलित साहित्य हिंदी साहित्य की महत्वपूर्ण एवं मजबूत शाखाओ में से एक है; जिसके अस्तित्व में आने से साहित्य कमजोर नहीं बल्कि उसे मजबूती प्राप्त होती है। । पाठकों के मन में दलितों के प्रति चेतना एवं संवेदना का विकास होता है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को लिपिब्ध किया। उन्होंने अपने जीवन यात्रा में जिन कठिनाईयों को यथार्थ रूप में भोगा उसी स्मृतियों को और अनुभवों को आधार बनाकर 'दलित साहित्य की रचना की । तुलसीराम की रचना, मुर्दहिया पर साहित्य के दलित सौन्दर्यशास्त्र की नई वैचारिकी के आधार पर गौर करें। लेखक ने अपनी आत्मकथा के पहले भाग को यह नाम तब दिया जब परिवर्तन की तेज रफ़्तार ने उस जगह का अस्तित्व ही मिटा दिया।

बीज शब्द : 'दलित साहित्य, आत्मकथा, मानवीय अधिकार, साहित्य, इतिहास और अस्तित्व

'दलित' शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है जिनको दमन या दवाया गया । वास्तव में भारतीय वैदिक ग्रंथों ने वर्णों की चार श्रेणी बनाई, जिनमें सभी वर्गों के कार्य एवं दायित्व पूर्व निर्धारित थे। सबसे नीचले पायदान पर 'शुद्रों' को रखा गया । इनका दायित्व ऊपर के तीनों वर्णों की सेवा करना था। इनका सामाजिक, मानसिक, आर्थिक एवं धार्मिक रूप से दमन किया गया। अर्थात इन्हें , वे सारे मानवीय अधिकार व सम्मान से वंचित रखा गया जो ऊपर उल्लेखित तीनों वर्षों को प्राप्त थे; जिन्हें वर्तमान में दलित नाम से जानते है। और इनके द्वारा लिखित साहित्य को दलित साहित्य कहा जाता है। "दलित सहित्य दलित लेखको द्वारा लिखित साहित्य है, जो सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और मानसिक रूप से उत्पीड़ित लोगों की बेहतरी के लिए लिखा गया हो, जो सच्चे अनुभावों पर आधारित हो और जीवंत भाषा में लिखा गया हो।"[1]

प्रारंभ में 'दलित साहित्य' के नामकरण को लेकर मतभेद थे। कुछ लेखकों के अनुसार 'दलित' शब्द का अर्थ कुचला हुआ, दमित या वंचित है और इस आधार पर वे अभावग्रस्त या वांचन के शिकार किसी भी समुदाय के व्यक्ति को दलित मानते हैं। परतु वास्तविक स्थिति अलग है । "यह कहना गलत नहीं है कि आर्थिक रूप से कमजोर और शोषित लोग दूसरे समुदायों में नहीं है। पर, यह मानना सर्वचा अनुचित होगा कि वे सामाजिक रूप से भी दीन-हीन है। एक गरीब ब्राहमण का सामाजिक अपमान नहीं होता, अभितु, वह गरीबी से ग्रस्त होते हुए भी समाज में विशेषाधिकारों का उपभोग कसा है, जो उन्हें जन्म से प्राप्त है।"[2]

अतः दलित वे है जिनका सामाजिक एक विशेष वर्ग के समूह से होने के कारण अस्पृश्यता कठोर नियम लागू किया गया और उनका सामाजिक, आर्थिक, एवं मानसिक शोषण किया गया। उन्हें गंदे और कठोर कार्य करने के लिर बाध्य किया गया एवं शिक्षा तथा स्वेच्छा से व्यवसाय अपनाने और करने पर रोक लगाकर सामाजिक निर्योग्यता का नियम लागू किया । वास्तव में वो ही 'दलित' है।

उन्होंने जाति के आधार पर साहित्य का विभाजन किया जाने पर रोष प्रकट किया उनका कहना है कि इससे साहित्य कमजोर और उसपर सम्प्रदायिकता जैसे तत्वों का प्रभाव पड़ सकता है, जो साहित्य के हित में अच्छा

* शोधार्थी (यूजीसी नेट), बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
** सहायक प्राध्यापक (शोध–निर्देशक), हिंदी विभाग, महिला महंत दास महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर

नहीं होगा। इस मत पर दलित लेखको का वक्तव्य है कि साहित्य का विभाजन भाषा के आधार पर जैसे संस्कृत बंग्ला, कन्नड, उर्दू, हिन्दी, अंग्रेजी, नेपाली आदि भाषाओं का साहित्य, इसका विभाजन केवल भाषा के आधार पर नहीं बल्कि विचारधारा, मत, दर्शन जैसे- गांधीवादी, मार्क्सवादी, वामपंथी तथा दक्षिणपंथी मतों के आधार पर अगर इसका विभाजन हो सकता है तो दलितो के वेदना उत्पीडन, संघर्ष उपलब्धि, भावनाओं को व्यक्त करने के लिए दलित साहित्य क्यों नहीं हो सकता है? "जो लोग जाति के आधार पर साहित्य के आधार पर विभाजन के पक्ष में नहीं है , वो जाति आधारित सामाजिक विभाजन भूल जाते है । वे यह भूल जाते है कि जीवन व्यापार में जाति किनती अहम भूमिका निभाती है। अंतरजातीय प्रेम संबंधों में पंचायतों की कुरूर सजाए जाति के हस्तक्षेप को ही प्रमाणित करती है। जब जाति का समाजशास्त्र इतना कटु है, तो वह साहित्य का सत्य क्यों नहीं बन सकता है।"[3] ?

वे यह भी मानते है कि दलित साहित्य हिंदी साहित्य की महत्वपूर्ण एवं मजबूत शाखाओ में से एक है; जिसके अस्तित्व में आने से साहित्य कमजोर नहीं बल्कि उसे मजबूती प्राप्त होती है। । पाठकों के मन में दलितों के प्रति चेतना एवं संवेदना का विकास होता है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को लिपिब्ध किया। उन्होंने अपने जीवन यात्रा में जिन कठिनाईयों को यथार्थ रूप में भोगा उसी स्मृतियों को और अनुभवों को आधार बनाकर 'दलित साहित्य की रचना की । उन्हें ही दलित साहित्य की श्रेणी में रखा गया है । दूसरे शब्दों में दलित साहित्य' वह साहित्य है जिसकी रचना स्वयं दलितों द्वारा की गई है। ऐसा कतई नहीं है कि गौरदलितों लेखको ने दलित साहित्य की रचना नहीं की । बहुत से गैर दलित रचनाकारों ने दलित साहित्य की रचना की है और कर भी रहे है। परंतु उसे दलित साहित्य के अंतर्गत नहीं रखा जा सकता क्योंकि "सवाल अनुभूतियों और चिन्तन का है। दलित जीवन की पीड़ा की जैसी अनुभूतियाँ एक दलित की होती है, वैसी अनुभूतियाँ एक स्वर्ण को नहीं हो सकती ।"[4]

तुलसीराम की रचना, मुर्दहिया पर साहित्य के दलित सौन्दर्यशास्त्र की नई वैचारिकी के आधार पर गौर करें। लेखक ने अपनी आत्मकथा के पहले भाग को यह नाम तब दिया जब परिवर्तन की तेज रफ़्तार ने उस जगह का अस्तित्व ही मिटा दिया। तुलसीराम इस कृति की भूमिका में बताते हैं : "सबसे ज्यादा दुखित करने वाली बात दिल्ली में रह रहे मेरे गाँव के कुछ प्रवासी मजदूरों से मालूम हुई। पचास-साठ साल पहले की जिस 'मुर्दहिया' का वर्णन मैंने किया है, वह पूर्णरूपेण उजड़ चुकी है। सारे जंगल काटकरखेत में बदल चुके हैं, जिसके चलते गिद्धों जैसे अनगिनत पक्षियों तथा साही, सियारों और खरगोशों जैसे पशुओं का विलोप हो चुका है।"[5]

इस वक्तव्य से यह स्पष्ट हो रहा है कि वे लिखते हैं : तुलसीराम अपने गाँव से लम्बे समय तक कटे रहे थे। उन्हें अपने गाँव में आए बदलावों की खबर कुछ प्रवासी मज़दूरों से मिली। लेकिन सबसे अधिक दुख उन्हें 'मुर्दहिया' के उजड़ जाने की खबर से हुआ। इसका कारण केवल किसी जगह का नष्ट होना नहीं था, बल्कि वह स्थान उनके बचपन, संघर्ष, स्मृतियों और पहचान से जुड़ा हुआ था। 'मुर्दहिया' उनके जीवन के उस अतीत का प्रतीक थी जहाँ उन्होंने दलित जीवन की पीड़ा, अपमान, अभाव और सामुदायिक अनुभवों को बहुत करीब से जिया था। इसलिए उसका उजड़ना उन्हें अपने ही इतिहास और अस्तित्व के मिट जाने जैसा लगा। यह अतीतमोह दरअसल अपने अनुभवों, जड़ों और सामूहिक स्मृतियों से भावनात्मक जुड़ाव का परिणाम है। रचना को पढ़ते समय यह प्रभाव भी बनता है कि दलित समाज पूरी तरह ब्राह्मणवादी व्यवस्था के प्रभाव से मुक्त नहीं था और उसके भीतर भी पारंपरिक धार्मिक-सामाजिक मान्यताओं का असर मौजूद था। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि उनमें परिवर्तन की आकांक्षा नहीं थी। सामाजिक संरचना इतनी गहरी और प्रभावशाली थी कि दलित समुदाय भी उसी व्यवस्था के भीतर सम्मान और पहचान पाने के रास्ते खोजता था।

इसी संदर्भ में तुलसीराम के परिवार का उदाहरण महत्वपूर्ण है। उनके बड़े चाचा सोम्मर 'बारह गाँवों के चमारों के चौधरी' थे, इसलिए समुदाय में उनका प्रभाव और सम्मान था। इसी तरह उनके पिता के दो भाई

शिवनारायण पंथ के धर्मगुरु थे और उनके अनेक चेले थे। इससे स्पष्ट होता है कि दलित समाज के भीतर भी नेतृत्व, धार्मिक प्रतिष्ठा और सामाजिक हैसियत के अपने ढाँचे मौजूद थे।

साथ ही, शिवनारायण पंथ के आयोजनों और पारिवारिक स्थिति से यह भी संकेत मिलता है कि तुलसीराम का परिवार अत्यंत निर्धन अतिदलित परिवारों की तुलना में कुछ बेहतर स्थिति में था। उनके पास सामाजिक पूँजी और सीमित आर्थिक स्थिरता दोनों थीं। फिर भी, जातिगत अपमान और भेदभाव से वे मुक्त नहीं थे। इसलिए रचना केवल दास मानसिकता का चित्रण नहीं करती, बल्कि यह दिखाती है कि दलित समाज विरोध, आत्मसम्मान, धार्मिक विकल्पों और सामुदायिक संगठन के जरिए अपनी जगह बनाने की कोशिश भी कर रहा था। हमारे घर में शिवनारायण पंथ की परम्परा में साल में तीन अवसरों पर समारोह होता... ये तीन अवसर, होली, दीवाली तथा जन्माष्टमी के दिन आते। "ढेर सारी अगरबत्तियाँ भी जलाकर रखी जातीं।' ... साथ ही एक बड़े कड़ाहे में दूध, घी, सूजी, गुड़ तथा किशमिश आदि के मिश्रण से ढेर सारा प्रसाद पकाया जाता, जिसका वितरण गादी समाप्त होने पर किया जाता।[6]"

रचना में वर्णित ये प्रसंग पहली नज़र में विरोधाभासी लगते हैं कि एक ओर परिवार और समुदाय आर्थिक अभाव से जूझ रहा है, दूसरी ओर अंधविश्वासों, पूजा-पाठ, बलि और ब्राह्मण भोज जैसे कर्मकांडों पर इतना खर्च किया जा रहा है। लेकिन यही उस समय के ग्रामीण दलित समाज की सामाजिक-मानसिक वास्तविकता को उजागर करता है।

भूतबाबा को प्रसन्न करने के लिए दूध, चावल और भेली चढ़ाने का प्रसंग बताता है कि गरीबी के बावजूद लोकविश्वास लोगों के जीवन में गहराई से मौजूद थे। बीमारी, संकट, भय और असुरक्षा से घिरे समाज में ऐसे धार्मिक-अंधविश्वासी कर्म लोगों को मानसिक सहारा देते थे। गरीब परिवार अक्सर अपनी ज़रूरतें काटकर भी देवी-देवताओं, बाबा या ओझाओं पर खर्च करते थे, क्योंकि उन्हें लगता था कि यही संकट से मुक्ति का रास्ता है।

सोम्मर चाचा की बीमारी के प्रसंग में यह और स्पष्ट हो जाता है। कोढ़ जैसी बीमारी उस समय केवल चिकित्सकीय समस्या नहीं, बल्कि सामाजिक भय और अपशकुन का विषय भी मानी जाती थी। इसलिए परिवार ने झाड़-फूँक, बलि, यज्ञ, कमल-पूजा, गायत्री जाप और ब्राह्मण भोज जैसे अनेक उपाय किए। यह केवल धार्मिक आस्था नहीं, बल्कि उस सामाजिक व्यवस्था का प्रभाव था जिसमें ब्राह्मणवादी कर्मकांडों को ही मुक्ति और समाधान का माध्यम माना जाता था।

तुलसीराम यहाँ केवल घटनाओं का वर्णन नहीं कर रहे, बल्कि यह भी दिखा रहे हैं कि दलित समाज स्वयं भी उसी वैचारिक ढाँचे से प्रभावित था जिसने उसे लंबे समय तक दबाकर रखा। सम्मान पाने, भय दूर करने और संकट से निकलने के लिए वही कर्मकांड अपनाए जाते थे जो ऊँची जातियों द्वारा मान्य थे।

साथ ही, इन प्रसंगों से यह भी स्पष्ट होता है कि तुलसीराम का परिवार बिल्कुल निराधार या अतिदरिद्र नहीं था। उनके पास सामुदायिक प्रतिष्ठा और कुछ आर्थिक संसाधन थे, तभी इतने बड़े धार्मिक आयोजनों का खर्च संभव हो पाया। लेकिन आर्थिक स्थिति अपेक्षाकृत बेहतर होने के बावजूद सामाजिक चेतना पूरी तरह वैज्ञानिक या विद्रोही नहीं बन सकी थी। यही कारण है कि रचना दलित जीवन की जटिलता को सामने लाती है—जहाँ शोषण के साथ-साथ परंपरा, आस्था, अंधविश्वास और सामाजिक प्रतिष्ठा की आकांक्षा भी एक साथ मौजूद थीं। तुलसीराम लिखते हैं "चूँकि हमारे चौधरी चाचा की बारहगाँवा में बड़ी इज्जत थी, इसलिए सैकडों की संख्या में ब्राह्मण उस भोज में आए थे।... कुल मिलाकर 501 से ज्यादा ही ब्राह्मण भोज में आए थे।"[7]

गाँव के सारे ब्राह्मण और बिरादरी के लोगों को मिला दें तो यह एक 'महाभोज' रहा होगा। स्पष्ट है कि इस सबका खर्च वहन करने की क्षमता तुलसीराम के परिवार में थी।

तुलसीराम यह भी लिखते हैं कि “हमारी दलित बस्ती में बहुत गरीबी थी'। वे अपने परिवार के बारे में यह असलियत बता भी देते हैं कि उनके परिवार के पास थोड़ी-बहुत ज़मीन थी, 'मेरे दादा-परदादा गाँव के ब्राह्मण ज़मींदारों के खेतों पर बँधुवा मज़दूर थे। उन जमीदारों ने कुछ खेत उन्हें दे दिया था। गाँव के अन्य दलित भी उन्हीं जमींदारों के यहाँ हरवाही (हल चलाने का काम) करते थे।”[8] तुलसीराम ने यह भी बताया कि उनके पिताजी हरवाही ही करते थे जिसे धर्मान्ध होने के कारण वे 'पवित्र कार्य' मानते थे। उनके बाक़ी चार भाई हरवाही नहीं करते थे। उनके बेटे आसनसोल की कोयला खदानों में और कलकत्ता के जूट मिलों और लोहे के कारखानों में मेहनत-मज़दूरी करते थे। तुलसीराम की दादी के पास रानी विक्टोरिया के ज़माने के चाँदी के सिक्के, 'बिस्टौरिया' थे, जिनके बारे में वे लिखते हैं कि 'मेरी बुढ़िया दादी के पास उक्त बिस्टौरिया वाले सैंतीस सिक्के न जाने कितने वर्षों से पड़े हुए थे।' इन खुलासों से यह संकेत तो मिलता है कि उनका परिवार भीषण और मारक ग़रीबी और शोषण का शिकार नहीं रहा था। उन्होंने अपने परिवार के बारे में लिखते समय यह द्वंद्वात्मकता स्पष्ट भी कर दी : “इस तरह हमारा परिवार संयुक्त रूप से बृहद होने के साथ-साथ वास्तव में एक अजायबघर ही था, जिसमें भूत-प्रेत, देवी-देवता, सम्पन्नता-विपन्नता, शकुन-अपशकुन, मान-अपमान, न्याय-अन्याय, सत्य-असत्य, ईर्ष्या-द्वेष, सुख-दुख आदि-आदि सब कुछ था, किन्तु शिक्षा कभी नहीं थी।”[9]

तुलसीराम 1949 में पैदा हुए थे। उनका जीवन आज़ादी के बाद के भारत के सामाजिक परिवेश में गुज्जरा था। उनकी आत्मकथा से उत्तर भारत के गाँवों का वह पिछड़ा समाज तो चित्रित हुआ ही है, उनकी अपनी शारीरिक और सामाजिक सीमाएँ और शक्तियाँ भी उजागर हुई हैं। तीन साल की उम्र में चेचक से एक आँख के प्रभावित होने से वे 'अपशकुन' के पात्र बन गए। वे लिखते हैं कि 'ऐसी श्रेणी में मेरा भी प्रवेश मात्र तीन साल की अवस्था में हो गया। अतः घर से लेकर बाहर तक सबके लिए मैं 'अपशकुन' बन गया।' तुलसीराम एक ब्राह्मण जंगू पांडे और एक पंडिताइन के प्रति समाज के इसी तरह के व्यवहार की पीड़ा सामने लाते हैं। यहाँ वे किसी जातिगत आग्रह से लोगों को नहीं देखते, इनसानियत की नज्जर से इन ब्राह्मणों की वेदना के साथ ख़ुद को जोड़ते हैं। इसी तरह बचपन में पढ़ाई के दौरान भी ठाकुरों के दो लड़कों ने उनके साथ जो दोस्ताना सलूक किया उसे भी वे सकारात्मक तरीके से चित्रित करते हैं। उनमें से एक संकठा सिंह ने एक अच्छे दोस्त की तरह उन्हें अक्षर लिखना सिखाया : “संकठा सिंह मेरे गाँव के पूरब में क़रीब तीन कि.मी. दूर स्थित बारी गाँव के एक बड़े जमींदार के बेटे थे। उनकी उम्र भी मेरे ही बराबर क़रीब पाँच-सात की थी, किन्तु वे बहुत ही समझदार और दयालु स्वभाव के थे। वे बहुत जल्दी लिखना सीख गए थे। उस समय स्कूलों में भी छुआछूत का प्रचलन बहुत ज़्यादा था और सवर्ण छात्र प्रायः दलित छात्रों से नहीं मिलते-जुलते थे। किन्तु संकठा सिंह अपवाद थे। उन्होंने ही मुझे एक तरह से मजबूर करके लिखना सिखाया था।”[10] गीता का पाठ भी तुलसीराम ने खूब किया। वे बताते हैं कि “मैं जब भी मुर्दहिया पर गोरू चराने जाता, गीता हमेशा साथ रहती थी। इस तरह मैंने घर से हमेशा के लिए भागने से पूर्व तीन साल से भी ज्यादा का समय... गीता पढ़-पढ़ कर बिताया।”[11]

तुलसीराम अपने गाँव के सम्पर्क में लम्बे अरसे से नहीं थे, बदलाव की ख़बर 'मेरे गाँव के कुछ प्रवासी मज़दूरों से मालूम हुई।' यह समझ में नहीं आ रहा कि तुलसीराम के लिए मुर्दहिया के उजड़ने की खबर 'सबसे ज्यादा दुखित करने वाली बात' क्यों लगी? यह अतीतमोह किसलिए? पूरी रचना ऐसा प्रभाव छोड़ती है कि दलित भी ब्राह्मणवादी विचारसरणि के दास थे और उस समाज में परिवर्तन की कोई आकांक्षा नहीं थी। परिवार में सबसे बड़े चाचा जिनका नाम सोम्मर था, 'बारह गाँवों के चमारों के चौधरी' थे, तो उन्हें सम्मान मिला हुआ था। उनके पिताजी के दो भाई शिवनारायण पंथ के 'धर्मगुरु' थे, 'इन दोनों गुरुओं के अलग-अलग दर्जनों चेले थे।' इसका मतलब, उन्हें भी सम्मान मिला हुआ था। इसी पंथ के एक आयोजन से यह भी पता लगता है कि तुलसीराम के घर वालों के पास अतिदलितों जैसा धन का अभाव भी नहीं था, तुलसीराम अपने गाँव से लम्बे समय तक कटे रहे थे। उन्हें अपने गाँव

में आए बदलावों की खबर कुछ प्रवासी मज़दूरों से मिली। लेकिन सबसे अधिक दुख उन्हें 'मुर्दहिया' के उजड़ जाने की खबर से हुआ। इसका कारण केवल किसी जगह का नष्ट होना नहीं था, बल्कि वह स्थान उनके बचपन, संघर्ष, स्मृतियों और पहचान से जुड़ा हुआ था। 'मुर्दहिया' उनके जीवन के उस अतीत का प्रतीक थी जहाँ उन्होंने दलित जीवन की पीड़ा, अपमान, अभाव और सामुदायिक अनुभवों को बहुत करीब से जिया था। इसलिए उसका उजड़ना उन्हें अपने ही इतिहास और अस्तित्व के मिट जाने जैसा लगा। यह अतीतमोह दरअसल अपने अनुभवों, जड़ों और सामूहिक स्मृतियों से भावनात्मक जुड़ाव का परिणाम है।

रचना को पढ़ते समय यह प्रभाव भी बनता है कि दलित समाज पूरी तरह ब्राह्मणवादी व्यवस्था के प्रभाव से मुक्त नहीं था और उसके भीतर भी पारंपरिक धार्मिक-सामाजिक मान्यताओं का असर मौजूद था। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि उनमें परिवर्तन की आकांक्षा नहीं थी। सामाजिक संरचना इतनी गहरी और प्रभावशाली थी कि दलित समुदाय भी उसी व्यवस्था के भीतर सम्मान और पहचान पाने के रास्ते खोजता था।

इसी संदर्भ में तुलसीराम के परिवार का उदाहरण महत्वपूर्ण है। उनके बड़े चाचा सोम्मर 'बारह गाँवों के चमारों के चौधरी' थे, इसलिए समुदाय में उनका प्रभाव और सम्मान था। इसी तरह उनके पिता के दो भाई शिवनारायण पंथ के धर्मगुरु थे और उनके अनेक चेले थे। इससे स्पष्ट होता है कि दलित समाज के भीतर भी नेतृत्व, धार्मिक प्रतिष्ठा और सामाजिक हैसियत के अपने ढाँचे मौजूद थे। साथ ही, शिवनारायण पंथ के आयोजनों और पारिवारिक स्थिति से यह भी संकेत मिलता है कि तुलसीराम का परिवार अत्यंत निर्धन अतिदलित परिवारों की तुलना में कुछ बेहतर स्थिति में था। उनके पास सामाजिक पूँजी और सीमित आर्थिक स्थिरता दोनों थीं। फिर भी, जातिगत अपमान और भेदभाव से वे मुक्त नहीं थे। इसलिए रचना केवल दास मानसिकता का चित्रण नहीं करती, बल्कि यह दिखाती है कि दलित समाज विरोध, आत्मसम्मान, धार्मिक विकल्पों और सामुदायिक संगठन के जरिए अपनी जगह बनाने की कोशिश भी कर रहा था।

इसी तरह एक अन्धविश्वास के असर में 'भूतबाबा को खुश करने के लिए हम लोग साथ में एक हँड़िया दूध, एक सेर चावल, तथा कुछ भेली ले गए थे।' एक अति गरीब इतना खर्च वहन कैसे कर सकता था? इसके अलावा तुलसीराम के प्रसिद्ध सोम्मर चाचा, जब कोढ़ रोग से ग्रस्त हो गए तो उनकी बीमारी दूर करने के अनेक अन्धविश्वासों पर आधारित उपायों पर भी अपार धन खर्च हुआ जिसमें बकरे की बलि से लेकर परभू चौबे के सुझाये गए यज्ञ का उपक्रम भी किया गया और जिसमें शिवलिंग पर ग्यारह सौ एक कमल के फूल चढ़ाने, नौ दिन तक लगातार गायत्री जाप और 501 ब्राह्मणों को भोज कराने तक का आयोजन शामिल था। पुरोहित परभू चौबे को हर रोज़ 'सिद्धा' यानी आटा, घी, दाल आदि सामान दिया जाता था।

रचना में वर्णित ये प्रसंग पहली नज़र में विरोधाभासी लगते हैं कि एक ओर परिवार और समुदाय आर्थिक अभाव से जूझ रहा है, दूसरी ओर अंधविश्वासों, पूजा-पाठ, बलि और ब्राह्मण भोज जैसे कर्मकांडों पर इतना खर्च किया जा रहा है। लेकिन यही उस समय के ग्रामीण दलित समाज की सामाजिक-मानसिक वास्तविकता को उजागर करता है।

तुलसीराम यहाँ केवल घटनाओं का वर्णन नहीं कर रहे, बल्कि यह भी दिखा रहे हैं कि दलित समाज स्वयं भी उसी वैचारिक ढाँचे से प्रभावित था जिसने उसे लंबे समय तक दबाकर रखा। सम्मान पाने, भय दूर करने और संकट से निकलने के लिए वही कर्मकांड अपनाए जाते थे जो ऊँची जातियों द्वारा मान्य थे।

साथ ही, इन प्रसंगों से यह भी स्पष्ट होता है कि तुलसीराम का परिवार बिल्कुल निराधार या अतिदरिद्र नहीं था। उनके पास सामुदायिक प्रतिष्ठा और कुछ आर्थिक संसाधन थे, तभी इतने बड़े धार्मिक आयोजनों का खर्च संभव हो पाया। लेकिन आर्थिक स्थिति अपेक्षाकृत बेहतर होने के बावजूद सामाजिक चेतना पूरी तरह वैज्ञानिक या

विद्रोही नहीं बन सकी थी। यही कारण है कि रचना दलित जीवन की जटिलता को सामने लाती है—जहाँ शोषण के साथ-साथ परंपरा, आस्था, अंधविश्वास और सामाजिक प्रतिष्ठा की आकांक्षा भी एक साथ मौजूद थीं।

मुर्दहिया तुलसीराम के प्रारम्भिक जीवन के देशकाल की आंशिक तर करती है। उसमें अपने गाँव में जन्म से लेकर आजमगढ़ में चारह तक के दौर का सघन चित्रण है। उसमें अनेक गाँव, क़स्बे, शहर आते हैं।हर तरह की मानवीय क्रियाशीलता, अनेक तरह के विश्वास, अनेक तरह के उत्सव, अनेक तरह की राजनीति, उनकी विचारधाराएँ, उनके नेता आदि के हवाले हैं। इस तरह तुलसीराम की कृति मुर्दहिया उनके भीतर बन रही एक ऐसी वैचारिकी और विश्वदृष्टि का घालमेल प्रतिबिम्बित करती है जो अपने वर्गीय सारतत्त्व में पूरे भारतीय समाज के निम्न मध्यवर्ग की वैचारिकी है। वे उन्हीं लेखकों में से एक हैं जो अपने मूल से कट जाने के बाद अपनी एक नई अस्मिता बनाने की अपार मेहनत करते हैं। इस तरह अपनी अस्मिता की नई खोज करते हैं। उन्हें वे भूले-बिसरे पल याद जरूर आते हैं, लेकिन गड्डमड्ड वैचारिकी में उलझे रहने की वजह से वे मुक्तिबोध के 'ब्रह्मराक्षस' बनकर रह जाते हैं। उन भूले-बिसरे चित्रों में इसी वजह से अनेक पात्र आते हैं, उन पात्रों के अन्धविश्वास, अनेक कुरीतियाँ, अज्ञान, पोंगापंथ से बाहर न निकलने की अवरुद्ध चेतना सभी कुछ की झलकियाँ इन चित्रों में मिल जाती हैं। इसी सबके बीच कुछ चित्र आधुनिक उभरते हुए समाज के भी, खासकर चुनावी प्रणाली की हलचलों के बहाने दिखाए गए हैं, या दोस्ती के नाते आए असर के तहत उस क्षेत्र की वाम राजनीति का भी सकारात्मक उल्लेख है।

मुर्दहिया में तुलसीराम ने अपने प्रारम्भिक जीवन के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिवेश का व्यापक चित्र प्रस्तुत किया है। जन्म से लेकर आज़मगढ़ में अध्ययन के दौर तक फैले इस आत्मकथात्मक वृत्तांत में गाँव, क़स्बे और शहरों के बदलते जीवन-संसार के साथ-साथ अनेक प्रकार की मानवीय गतिविधियाँ, लोकविश्वास, उत्सव, सामाजिक संबंध, राजनीतिक हलचलें और वैचारिक प्रभाव दर्ज हुए हैं। यह कृति केवल एक व्यक्ति की जीवनकथा नहीं रह जाती, बल्कि भारतीय निम्न मध्यवर्गीय समाज की जटिल वैचारिकी और मानसिक संरचना का दस्तावेज़ बन जाती है। तुलसीराम के भीतर विकसित हो रही विश्वदृष्टि में परंपरा, जातिगत अनुभव, धार्मिक संस्कार, आधुनिक शिक्षा, वामपंथी प्रभाव और सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा—सभी एक साथ उपस्थित दिखाई देते हैं। यही कारण है कि उनकी वैचारिकी कई बार अंतर्विरोधों से भरी हुई प्रतीत होती है। तुलसीराम उन लेखकों में दिखाई देते हैं जो अपने मूल सामाजिक परिवेश से निकलकर नई पहचान गढ़ने का संघर्ष करते हैं। नई अस्मिता की इस खोज में वे अपने अतीत से पूरी तरह मुक्त भी नहीं हो पाते। इसलिए उनके स्मृति-चित्रों में गाँव का जीवन, जातिगत अनुभव, रिश्ते, लोकविश्वास, अंधविश्वास, कुरीतियाँ और पोंगापंथ लगातार लौटते रहते हैं। यह स्मरण केवल भावुकता नहीं, बल्कि उस सामाजिक यथार्थ की पुनर्रचना है जिसने उनके व्यक्तित्व को आकार दिया। इसी संदर्भ में मुक्तिबोध के 'ब्रह्मराक्षस' की उपमा सार्थक लगती है। आधुनिक चेतना और परंपरागत संस्कारों के बीच फँसा हुआ व्यक्ति एक प्रकार की वैचारिक उलझन का शिकार हो जाता है। तुलसीराम के यहाँ भी कई पात्र ऐसी अवरुद्ध चेतना का प्रतिनिधित्व करते हैं जो शोषण और अंधविश्वास से घिरी होने के बावजूद उससे पूरी तरह बाहर नहीं निकल पाती।

फिर भी, रचना केवल जड़ता का आख्यान नहीं है। इसके भीतर उभरते हुए आधुनिक समाज की हलचलें भी मौजूद हैं। चुनावी राजनीति, सामाजिक बदलाव, शिक्षा का प्रभाव, नए सामाजिक संबंध और विशेष रूप से वामपंथी राजनीति के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि—ये सभी संकेत करते हैं कि समाज के भीतर परिवर्तन की प्रक्रियाएँ सक्रिय थीं। मित्रताओं, राजनीतिक संपर्कों और शिक्षा के माध्यम से तुलसीराम के भीतर एक नई सामाजिक-राजनीतिक चेतना विकसित होती दिखाई देती है।

संदर्भ सूची –

1. सिंह, डॉ. एन, दलित साहित्य के प्रतिमान, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं 23
2. भारती, भारती, दलित साहित्य की अवधारणा, वोधिसत्व प्रकाशन, रामपुर उत्तरप्रदेश, प्रथम संस्करण, 2006, पृष्ठ सं- 15
3. वही पृष्ठ सं 1
4. वही पृष्ठ सं 16
5. तुलसीराम, मुर्दहिया, राजकमल, प्रकशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2010, भूमिका
6. तुलसीराम, मुर्दहिया, राजकमल, प्रकशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2010, पृष्ठ संख्या-18
7. वही, पृष्ठ संख्या-122
8. वही, पृष्ठ संख्या- 14
9. वही, पृष्ठ संख्या- 21
10. वही, पृष्ठ संख्या- 25
11. वही, पृष्ठ संख्या- 119-120

हिन्दी संस्मरण साहित्य का उद्‌भव एवं विकास

अमित कुमार*

शोध–सार

हिन्दी साहित्य के उद्‌भव और विकास के क्रम में गद्य के अनेक रूपों का चित्रण होता है। निबन्ध, आत्मकथा, यात्रा–वृतान्त, संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी आदि की महत्वपूर्ण भूमिका है। परन्तु यहाँ हमें केवल संस्मरण साहित्य का विकास क्रम देखना है। किसी भी काल में साहित्य की नयी विधा जब सामने आती है तो उसमें पत्र पत्रिका की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। संस्मरण साहित्य भी अपने आगमन की घोषणा पत्रिका के माध्यम से ही करता है। यह घोषणा हिन्दी के सर्वाधिक प्रतिष्ठित पत्रिका 'सरस्वती' के माध्यम से हुआ। इसके विभिन्न अंकों में समय–समय पर अनेक रोचक संस्मरण प्रकाशित होते रहे और धीरे–धीरे संस्मरण साहित्य अपने अस्तित्व में आने लगा।

बीज शब्दः– संस्मरण, निबन्ध, आत्मकथा, यात्रा–वृतान्त, रेखाचित्र, जीवनी, उद्‌भव, विधा

परिचयः–

'संस्मरण' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'स्मृ' धातु से हुई है जिसमें सम् उपसर्ग और अन् प्रत्यय लगा है। संस्मरण का अर्थ होता है– स्मरण करना या याद करना। संस्मरण लेखन तात्पर्य है– लेखक जो स्वयं देखता है जिसका वह स्वयं अनुभव करता है, उसी का वर्णन करता है। उसके वर्णन में उसकी अनुभूतियाँ और उसकी संवेदनाएँ रहती है। स्मृति ही संस्मरण का रूप है। किसी व्यक्ति, घटना–दृश्य था वस्तु को आत्मीयता के साथ याद करते हुए उसका विवेचन संस्मरण की संज्ञा पा जाता है। अनुभव और स्मृति के आधार पर आत्मीयतापूर्ण साहित्य को संस्मरण कहते हैं।

मुख्य भाग

विधा की दृष्टि से संस्मरण बहुत ही लचकदार विधा है। इसके तत्व और गुण अनेक विधाओं में मिल जाते हैं। यही कारण है कि बहुत समय तक रेखाचित्र जीवनी रिपोर्ताज इत्यादि विधाओं को एक ही समझा जाता रहा। संस्मरण और रेखाचित्र कहीं–कहीं इस तरह जुड़े कि एक दूसरे के पर्याय मान लिये गए। महादेवी वर्मा और रामवृक्ष बेनीपुरी की रचनाओं के साथ प्रायः यही हुआ। बहुत से संस्मरणों को रेखाचित्र कह दिया गया, जबकि दोनों का अन्तर स्पष्ट है। संस्मरण और रेखाचित्र दोनों एक दूसरे से भिन्न विधा है।

संस्मरण साहित्य में वर्णनात्मकता की प्रधानता होती है और विवरण प्रस्तुत करने की स्वतंत्रता। स्मृति के हर पहलू घटनाओं के साथ जोड़कर अंकित किया जाता है। संस्मरण में अभिव्यक्ति के हर शब्द चित्र बनकर उपस्थित होते हैं। स्मृति का प्रवाह घटनाओं, परिस्थितियों और व्यक्ति के जीवन से जुड़कर अभिव्यक्त होता है। संस्मरण साहित्य व्यक्ति व्यतीत किए गए अनुभूतियों से व्यंजित होता है। लेखक हमेशा अपने आन्तरिक अनुभवों का अनुशीलन करता है। इसमें व्यक्तिगत संबंधों को आधार माना गया है। जब किसी व्यक्ति, वस्तु, घटना आदि के साथ जुड़ी हुई यादों पर से समय का आवरण हट जाता है और अतीत की घटनाएँ चलचित्र की रील की भांति साकार होकर क्रमबद्ध हो जाती है। कल्पना के लिए इस विधा में कोई खास जगह नहीं होती। उन्हीं घटनाओं का वर्णन होता है जो जीवन में घट चुकी है और प्रमाणिक है। लेखक को अपने अनुभवों, रूचि, अरूचि अपने संबंधों, प्रतिक्रियाओं मन पर पड़े विभिन्न प्रभावों का वर्णन करने की पूरी आजादी रहती है।

संस्मरण साहित्य की प्रमुख विशेषता वैयक्तिकता मानी जाती है। इसका सहारा लिए बिना संस्मरण नहीं लिखा जा सकता। संस्मरण में लेखक अपने जीवन की किसी ऐसी घटना का वर्णन करता है जिसे वह भूला नहीं पाता। प्रायः सभी लिखनेवालों ने इस बात को स्वीकार किया। महादेवी ने अतीत के चलचित्र में कहा है– ''इस स्मृति चित्रों में मेरा जीवन आ गया है।'' यह स्वाभाविक भी था। मेरे जीवन की परिधि के भीतर खड़े होकर चलचित्र जैसा परिचय दे जाते हैं वह बाहर रूपान्तरित हो जायेगा। स्मरण में सम्पूर्ण जीवन

* शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी–विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
ईमेल– amitmanohar221297@gmail.com, मो. 9576218502

का चित्रण न करके कुछ घटनाओं का विवेचन होता है। लेखक अपने जीवन की किसी घटना विशेष या सम्पर्क में आए हुए व्यक्ति विशेष के चरित्र के महत्वपूर्ण पक्ष की झांकी पेश कर जीवन के खण्ड रूप या किसी एक पक्ष का ही चित्रण करता है। वह खण्ड विशेष अपने आप में महान होता है और आत्मलम्बन की विशेषताओं पर प्रकाश डालने वाला भी यह कथात्मक साहित्य विद्या है। यह कथा काल्पनिक न होकर सत्य पर आधारित रहती है। शंका और आत्मविश्वास की गुंजाइश स्मरण में बहुत कम होती है। कथा का ताना–बाना व्यक्ति जीवन और घटनाओं से बुना जाता है। और पाठक के साथ सहज तादात्मय हो जाता है। जीवन के ऐसे अनेक पक्षों और प्रसंगों की झांकी स्मरण में पेश की जाती है।

हिन्दी संस्मरण साहित्य के विकास में हिन्दी के शीर्षस्थ साहित्यकारों ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आचार्य हजारी प्रसदा द्विवेदी ने 'गुरुवर श्री एण्ड्रज' शीर्षक संस्मरण में लिखा है– ''एण्ड्रज साहब जब पिछली बार भारतवर्ष आये तब उनके मन में अनेक धुनों के साथ एक बड़ी धुन यह भी थी कि शान्ति निकेतन में 'हिन्दी भवन' जल्दी बन जाए। कुछ समय के लिए तो यह धून इतनी तेज हुई कि मैं और भगवती प्रसाद जी सदा सशंक बने रहे थे कि न जाने कब वे क्या प्रस्ताव लेकर आ धमके।''[1]

विष्णु प्रभाकर वे भी अपने संस्मरण साहित्य लेखन के माध्यम से हिन्दी संस्मरण साहित्य के विकास क्रम को आगे बढ़ाया है। संस्मरण साहित्य में व्यक्ति अपने जीवन के यथार्थ भावनात्मक स्मृतियों के शब्दों में व्यंजित करता है। विष्णु प्रभाकर ने 'डॉ0 कामिल बुल्के : एक और क्राइस्ट' शीर्षक में लिखा है– ''किवाड़ खोलकर बहुत धीरे–धीरे अन्दर प्रवेश किया। प्रशस्त प्रकोष्ठ। शुभ श्वेत बिछावन वाली ऊँची लौह शय्या पर लेटे हैं फादर। दायाँ पैर तकियों पर टिका है। उधर मुँह किये कुर्सियों पर बैठे दो मित्रों से बातें कर रहे हैं। वे दोनों भी पादरी हैं। मैं आगे बढ़ा। आहट हुई। फादर मुड़े। वही प्रफुल्लित चेहरा मुझे देखते ही और भी प्रफुल्लित स्वर में बोल उठे 'आह' विष्णुजी आप आ गये।''[2]

संस्मरण साहित्य का विकास दिन–प्रतिदिन बढ़ता गया। इसका विकास क्रम इस गति से आगे बढ़ा कि यह साहित्य की एक प्रमुख विधा के रूप में सामने आयी। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद रचित 'डायरी के पन्ने' शीर्षक संस्मरण को इस विकास श्रृंखला में देख सकते हैं। प्रस्तुत है इस संस्मरण का कुछ अंश उदाहरण स्वरूप– ''आज का दिन भारत के लिए अपूर्व दिन है। आज हमारा प्रजातंत्रात्मक गणराज्य स्थापित हुआ और तत्संबंधी उत्सव दिल्ली में और सारे देश में मनाया गया। रात से तबीयत कुछ सुस्त थी– ज्वर–सा था। सबेरे ही बापू की समाधि पर सरदार और घर के लोगों के साथ गया। प्रार्थना हुई। वहाँ से बिड़ला मंदिर में जाकर दर्शन किया।''[3]

संस्मरण साहित्य के विकास परम्परा की शुरुआत इस प्रकार होती है ''स्वयं महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'अनुमोदन का अन्त' (फरवरी 1905), 'सभा की सभ्यता'' (अप्रैल 1907) 'विज्ञानाचार्य बसु का विज्ञान मन्दिर' (जनवरी 1918) आदि की रचना करके संस्मरण साहित्य की श्रीवृद्धि की।''[4] सरस्वती के विभिन्न अंकों में महावीर प्रसाद द्विवेदी के अतिरिक्त राम कुमार खेमका, का 'इधर–उधर की बातें' (मई 1918), जगत बिहारी सेठ का 'मेरी बड़ी छुट्टियों का प्रथम सप्ताह' (जून 1913), पाण्डुरंग खानखोजे का 'वाशिंगटन महाविद्यालय का संस्थापन दिनोत्सव' (अक्टूबर 1913) प्यारेलाल मिश्र 'लंदन का फाग या कुहरा' (फरवरी 1908), काशी प्रसाद जायसवाल का 'इग्लैंड के देहात में महाराज बनारस का कुँआ' (जुलाई 1907), जगन्नाथ खन्ना का 'अमेरिका आने वाले विद्यार्थियों को सूचना' (दिसम्बर, 1911) और भोलादत्त पाण्डेय का 'मेरी नयी दुनिया सम्बन्धिनी राम कहानी' (दिसम्बर 1909) शीर्षक संस्मरण प्रकाशित हुआ। इसमें अधिकांश संस्मरण प्रवासी भारतीयों द्वारा लिखा गया। इसका मूल उद्देश्य पश्चिमी देशों की संस्कृति से भारतीयों को परिचित कराना था। इन सभी संस्मरणों में निबन्धात्मकता की शैली आ गयी है। संस्मरण साहित्य के प्रारंभिक अवस्था में पुस्तकाकार रूप में हरिऔंध जी का संस्मरण उल्लेखनीय कृति है। यद्यपि इस पुस्तक के लेखक के रूप में वेणीमाधव शर्मा का नामोल्लेख हुआ है। परन्तु इस पुस्तक के 'निवेदन' से यह स्पष्ट होता है कि इसके लेखक बालमुकुन्द गुन्त है। इस प्रकार संस्मरण साहित्य का आरम्भ होता है। और धीरे–धीरे यह साहित्य की महत्वपूर्ण विधा के रूप में सामने आता है। आगे चलकर संस्मरण साहित्य की रचना में अनेक साहित्यकारों ने अपना योगदान दिया है जिनमें यात्रावृत्त मूलक संस्मरण प्रकाशित हुए जिनसे देश–विदेशों के जीवन के विविध पक्ष दर्शनीय स्थानों, प्राकृतिक सौन्दर्य आदि का वर्णन रोचक ढंग से किया गया। संस्मरण साहित्य के विकास में कई अन्य पत्रिकाओं का भी योगदान है जिन्हें इस प्रकार देखा जा सकता है– '' 'विशाल भारत' सुधा' और 'माधुरी' में भी कतिपय उल्लेखनीय संस्मरण प्रकाशित हुए। आचार्य रामदेव, अमृतलाल चक्रवर्ती, बनारसी दास चतुर्वेदी मंगलदेव शर्मा प्रभृति लेखकों ने इन पत्रिकाओं के लिए क्रमशः स्वामी श्रद्धानन्द, बालमुकुन्द गुप्त श्रीधर पाठक

और पद्म सिंह शर्मा से सम्बद्ध जीवनी परक संस्मरणों की रचना की। सुधा (1921) में प्रकाशित इलाचन्द्र जोशी कृत 'मेरे प्राथमिक जीवन की स्मृतियाँ' तथा वृन्दावनलाल वर्मा कृत 'कुछ संस्मरण' भी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। पत्रिकाओं में प्रकाशित सामग्री के अतिरिक्त इस अवधि में संस्मरणों के कतिपय संकलन भी प्रकाशित हुए जिनमें शिवराम पाण्डेय, श्रीराम शर्मा, मन्मथनाथ गुप्त तथा शिवनारायण टंडन द्वारा क्रमशः रचित 'मदन मोहन के संबंध की कुछ पुरानी स्मृतियाँ' (1932), शिकार (1936) 'क्रान्ति युग के संस्मरण' (1937) और 'झलक' (1938) उल्लेखनीय है। इनमें से अन्तिम कृति में हरिऔंध जी के जीवन की कुछ स्मृतियाँ दी गयी हैं। बाबूराव विष्णुराव पराड़कर द्वारा सम्पादित हंस का प्रेमचन्द्र स्मृति अंक (1937) तथा ज्योतिलाल भार्गव द्वारा सम्पादित साहित्यिकों के संस्मरण भी इसी युग की उल्लेखनीय रचनाएँ हैं।''[5]

आगे चलकर संस्मरण साहित्य संस्मरणात्मक रेखाचित्रों की विधा का रूप ग्रहण कर लिया। इसके विकास में कतिपय साहित्यकारों ने अपनी लेखनी का योगदान दिया जिनमें श्रीराम शर्मा, महादेवी वर्मा तथा बनारसी दास चतुर्वेदी महत्वपूर्ण है। श्रीराम शर्मा कृत 'बोलती प्रतिमा' (1937) में प्रकाशित हुआ। इस रचना में लेख रेखाचित्र और कहानियों का संकलन है। परन्तु यह संस्मरणात्मक शैली से ओत–प्रोत है। इस पुस्तक में 'भाई जगन्नाथ' सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना है। श्री राम शर्मा ने अपनी इस रचना में ग्रामीण परिवेश का जीवन्त चित्रण प्रस्तुत किया है। ग्रामीणों के सुख–दुख तपस्या–त्याग आदि का ओजस्वी शैली में वर्णन हुआ है। बनारसी दास चतुर्वेदी तथा महादेवी वर्मा का संस्मरणात्म रेखा चित्र की रचना में अमूल्य योगदान है। इनकी रचनाएँ पत्र–पत्रिकाओं के पृष्ठों पर प्रतिष्ठित होते रहे, इनके संबंध में डॉ0 नगेन्द्र की पुस्तक में उल्लिखित है– ''बनारसी दास चतुर्वेदी ने व्यंग्य का पुट देते हुए छोटे–छोटे वाक्यों तथा रोचक शैली के माध्यम से पाठक के मन पर अपनी अमिट छाप छोड़ देनेवाली चित्रोपम रचनाओं का प्रणयन किया है, जो महादेवी वर्मा ने समाज के दीन–हीन तथा शोषित व्यक्तियों को कथ्य के रूप में चुनकर भारतीय समाज का जीवन चित्र प्रस्तुत कर दिया। महादेवी के रेखाचित्रों में संवेदनशीलता भावुक कल्पना, कवि हृदय और कलात्मक अभिव्यक्ति का अभूतपूर्व उत्कर्ष मिलता है।''[6]

यद्यपि रेखाचित्र और संस्मरण दोनों में काफी अन्तर है। दोनों साहित्य की दो विधाओं के रूप में सामने आता है। संस्मरण साहित्य और रेखाचित्र दोनों विधाओं में कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियों से भिन्नता है। कथ्य की दृष्टि से संस्मरण साहित्य में समाजसेवी नेताओं, साहित्यकारों तथा प्रवासी भारतीयों के स्मृति प्रसंगों को समाहार कर पाठक को कर्मक्षेत्र में अग्रसर होने की प्रेरणा दी गयी है तथा रेखा चित्र के कथ्य में समाज के उपेक्षित व्यक्तियों के चित्रण पर बल दिया गया है। शिल्प की दृष्टि से दोनों विधाओं में चित्रात्मकता का बाहुल्य मिलता है।

संस्मरण साहित्य के विकास में मधुकर का भी महत्वपूर्ण योगदान है। मधुकर की संस्मरणात्मक रचनाएँ 'हमारे अराध्य' (1952) और 'संस्मरण' (1953) में प्रकाशित हुआ। हिन्दी के संस्मरणात्मक रेखाचित्र साहित्य की श्रीवृद्धि में महादेवी वर्मा ने अत्यधिक महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इनकी रचनाएँ – 'अतीत के चलचित्र' (1941), 'स्मृति की रेखाएँ' (1947), 'पथ के साथी' (1956), 'स्मारिका' (1971) और 'मेरा परिवार'(1972) आदि उल्लेखनीय है।इन कृतियों में रेखाचित्र एवं संस्मरण दोनों विधाओं की रचनाओं का विधान हुआ है। महादेवी वर्मा की रचनाओं के संबंध में डॉ0 नगेन्द्र की पुस्तक में उल्लिखित है – ''यद्यपि महादेवी की रचना की विधा के संबंध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद रहा है। इन्हें निबन्ध संस्मरण और कहानी में से कोई एक संज्ञा भी दी जाती रही है; किन्तु अधिकांश विद्वान उन्हें संस्मरणात्मक रेखाचित्र ही मानते हैं। अपने सम्पर्क में आनेवाले शोषित व्यक्तियों, दीन–हीन नारियों साहित्यकारों', जीव–जन्तुओं आदि का संवेदनात्मक चित्रण उन्होंने अत्यंत मार्मिक रूप में किया है। अपनी संवेदना को कवित्वपूर्ण शैली के माध्यम से मूर्त कर देने में उन्हें विशेष कौशल प्राप्त है। वे साहित्यकार होने के साथ चित्रकर्त्री भी हैं फलतः उनके रेखाचित्रों में चित्रोपमता का गुण अनायास समाविष्ट हो गया है।''[7]

संस्मरण साहित्य लेखन की श्रृंखला में अपना योगदान देनेवाले लेखकों में प्रकाशचन्द्रगुप्त – पुरानी स्मृतियाँ (1947) तथा राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह का मौलवी साहब, देवी बाबा आदि शीर्षक संस्मरण पढ़ने योग्य है। उपयुक्त विशेषणों, विशिष्ट उपमाओं तथा ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग इनकी रचनात्मक शैली को जीवन्तता प्रदान करती है। इसी तरह कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर कृत जिन्दगी मुस्कुराई 1953 में प्रकाशित संस्मरणों का संकल्प अत्यंत उत्कृष्ट है। कन्हैयालाल मित्र प्रभाकर मामूली से मामूली व्यक्ति अथवा घटना पर प्रांजल भाषा तथा चुस्त शैली में संस्मरण लिख डालने की कला में प्रवीण शिवपूजन सहाय का संस्मरण 'वे दिन वे लोग' (1965) में संकलित हैं। इन्होंने व्यंग्य एवं विनोद का सहारा लेते हुए मुहावरेदार भाषा का प्रयोग

कर संस्मरण साहित्य को समृद्ध किया है। सत्यवती मल्लिक का संस्मरण 'अमिट रेखाएँ' (1951) में संकलित हैं। देवेन्द्र सत्यार्थी भावात्मक संस्मरण के लेखन के लिए प्रसिद्ध है। 'रेखाएँ बोल उठी' (1949), देवेन्द्र सत्यार्थी की प्रसिद्ध कृति है। शान्तिप्रिय द्विवेदी ने 'स्मृतियाँ और कृतियाँ' (1966) में अद्‌भुत संस्मरणों का संकलन किया है। इतना ही नहीं संस्मरण साहित्य के विकास क्रम को आगे बढ़ाने में कवियों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इन कवियों में माखनलाल चतुर्वेदी, रामधारी सिंह दिनकर और हरिवंश राय बच्चन की उल्लेखनीय भूमिका है। माखनलाल चतुर्वेदी का 'समय के पाँव' (1962) में प्रकाशित है। रामधारी सिंह दिनकर ने 'लोकदेव नेहरू' (1965) तथा 'संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ' (1969) में लिखा जिनमें सरल एवं भावपूर्ण भाषा के माध्यम से अपने युग के प्रमुख साहित्यकारों, राजनीतिक नेताओं आदि के निजी संबंधों का चित्रण किया है। हरिवंश राय बचचन की कृति है – 'नये पुराने झरोखे' (1962) जिसमें लेखक ने यथा स्थान आधुनिक हिन्दी साहित्य पर टिप्पणियाँ देते हुए उसकी दुर्बलताओं और सबलताओं का सशक्त अंकन किया है। इसके अतिरिक्त हिन्दी संस्मरण साहित्य के विकास में कतिपय रचनाकारों ने अपना योगदान दिया है जिनमें सत्यजीवन वर्मा भारतीय की रचना 'एलबम' (1949), ओंकार शरद की लंका महाराजिन (1950), कैलाश नाथ काटजू की 'मैं भूल नहीं सकता' (1955), विनोद शंकर व्यास की 'प्रसाद और उनके समकालीन' (1960) सम्पूर्णानन्द की 'कुछ स्मृतियाँ और स्फुट विचार (1962) लक्ष्मी नारायण सुधांशु की 'व्यक्तित्व की झाँकियाँ' (1970) अमृतलाल नागर की 'जिनके साथ जिया' (1973) परिपूर्णानन्द की 'बीती बाते' (1976), क्रान्तिकारी भगत सिंह की 'मेरे क्रान्तिकारी साथी' (1977), कृष्णा सोबती की 'हम हरामत' (1977), भारत भूषण अग्रवाल की 'लीक अलीक' (1980), डॉ0 राम कुमार वर्मा की 'संस्मरणों के सुमन' (1982), विष्णु प्रभाकर की 'मेरे अग्रज : मेरे मीत' (1983) फणीश्वर नाथ 'रेणु' की 'वनतुलसी की गंध' (1984) तथा भगवती शरण सिंह की 'रस गगन गुफा में' (1986) ने संस्मरण साहित्य को समृद्धि प्रदान की है तथा विकास क्रम की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया है।

हिन्दी साहित्यकारों ने संस्मरण साहित्य को अन्य भाषाओं से अनुवाद कर हिन्दी संस्मरण को समृद्ध करने का काम किया है। जिनमें बंगला से अनुदित रचनाओं में हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा अनुदित रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचना 'मेरा बचपन', गुजराती से अनुदित रचनाओं में मनुबहन गांधी की रचनाएँ 'बा मेरी माँ' कुरंगी बहन देसाई द्वारा। पंजाबी से अनुदित रचनाओं में अमृता प्रीतम की रचना 'अतीत की परछाइयाँ' (1962) उर्दू से अनुदित रचनाओं में उपेन्द्रनाथ अश्क द्वारा सम्पादित 'उर्दू बेहतरीन संस्मरण' (1962) तथा नयनतारा सहगल द्वारा अंग्रेजी में लिखित पुस्तक 'प्रिजन एण्ड चाकलेट केक' का मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव द्वारा हिन्दी में अनुवाद 'मेरा बचपन' कतिपय उल्लेखनीय कहानियाँ हैं। 'अतीत की परछाइयाँ' में जहाँ देश विदेश के कृतिकारों से सम्बद्ध अछूते संस्मरण मिलते हैं वहाँ 'उर्दू के बेहतरीन संस्मरण' हिन्दी के पाठकों को उर्दू में लिखे जा रहे संस्मरणों की शैली से परिचित कराते हैं। इन संस्मरणों में संस्मर्ण्य के गुण–दोष के सम्यक् विश्लेषण के साथ–साथ जीवन प्रसंगों एवं घटनाओं का यथार्थ चित्रण मिलता है। नयनतारा सहगल की रचना से नेहरू परिवार की अन्तरंग झाँकी मिलने के साथ–साथ भारतीय स्वातंत्र्य आन्दोलन की कहानी के अनेक महत्वपूर्ण पक्ष उजागर होते हैं। विदेशी साहित्य से अनुदित रचनाओं में इलाचन्द्र जोशी कृत 'गोर्की के संस्मरण' (1942) सर्वाधिक उल्लेखनीय कृति है।

संस्मरण साहित्य को समृद्ध करने और विकास की श्रृंखला को आगे बढ़ाने में सबसे अनमोल निधि वे पत्र–पत्रिकाएँ हैं जिनमें नियमित रूप से संस्मरण प्रकाशित होते रहे हैं। यह विकास की प्रक्रिया हिन्दी की सर्वाधिक प्रतिष्ठित पत्रिका 'सरस्वती से आरम्भ होकर' आज अनगिनत पत्र–पत्रिकाओं में स्थान प्राप्त कर चुका है। सरस्वती में 'मनोरंजक संस्मरण', नयी धारा में 'मुझे याद है' धर्मयुग में 'एक दिन की बात' 'अविस्मरणीय, जब मैं सोलह साल की थी' आदि शीर्षक के अन्तर्गत असंख्य संस्मरण प्रकाशित हुए हैं। सारिका ने तो पूरे के पूरे अंक ही संस्मरण पर निकाल दिए हैं। संस्मरणों का यह भण्डार परिमाण की दृष्टि से ही नहीं बल्कि विषय वैविध्य की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। क्योंकि ये जीवन के विविध क्षेत्रों जैसे चिकित्सा, क्रीड़ा, फिल्म जगत, संगीत, नृत्य आदि से जुड़े लोगों के साथ सम्बद्ध है। इनमें समाज द्रोहियों के भी संस्मरण है और समाज सुधारकों के भी। इनमें अहिन्दी प्रदेश में रहते हुए हिन्दी सेवियों के संस्मरण भी हैं तथा हिन्दी सेवा में जुड़े विद्वानों के संस्मरण भी। इस दृष्टि से रूस के प्रसिद्ध हिन्दी विद्वान डॉ0 ये0पे0 चेली सेव का संस्मरण 'निराला जीवन और संघर्ष के मूर्तिमान रूप' प्रकाशन समाचार, (जनवरी 1983) विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वस्तुतः संस्मरणों का ऐसा संगम अन्यत्र दुर्लभ है। आज के समय में प्रकाशित होनेवाले पत्र–पत्रिकाओं का भी संस्मरण साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है, जिनमें साहित्य अमृत, हंस,

साक्षात्कार एवं युद्धरत आम आदमी की देन उल्लेखनीय है। पत्र– पत्रिकाओं के साथ–साथ अभिनन्दन ग्रन्थों तथा स्मृति ग्रन्थों में भी अनेकानेक संस्मरणों को प्रतिष्ठित किया गया है। ''ये तीन नाम भी बिना किसी विशेष वाद–विवाद के स्वीकृत हो गए। वे थे एक अज्ञेय, दो विद्यानिवास मिश्र, तीन विजयेन्द्र स्नातक। कालखण्ड का बँटवारा भी आसानी से हो गया। लेकिन दुर्भाग्य ने अभी अकादमी का पीछा नहीं छोड़ा था। कुछ दिन बाद ही अचानक बड़े भाई अज्ञेय का देहावसान हो गया। विद्यानिवास जी किन्हीं कारणों से पीछे हट गए। मेरे जाने के बाद किसी तरह अकेले डॉ0 स्नातक ने यह कार्य सम्पन्न किया।''[8]

संस्मरण पूर्णतः उन स्मृतियों को सामने लाता है जो कभी किसी के साथ व्यतीत किया गया हो और उन बीते परिस्थितियों से संस्मरण अवगत कराता है तथा समाज को एक नयी चेतना और नवीन दृष्टिकोण प्रदान करता है। पंडित विद्यानिवास मिश्र के साथ व्यतीत किए हुए क्षणों को विष्णुकान्त शास्त्री ने इन रूपों में व्यक्त किया है– ''व्यक्ति जब चला जाता है तो उसके साथ बिताए हुए अन्तरंग क्षण और मूर्त हो उठते हैं। वस्तु जगत का अभाव भाव जगत् पूरा तो नहीं कर सकता, किन्तु साहचर्य की स्मृतियाँ कौंधती रहती हैं तो लगता है, वह साथ ही है और साथ ही रहेगा। पंडित विद्यानिवास मिश्र भी आज वस्तु जगत में नहीं किन्तु मेरे भाव जगत में वे और गहरे उतर गए हैं।''[9]

हिन्दी संस्मरण साहित्य के विकास में रामगोपाल बजाज, हेमंत कुकरेती का योगदान भी सराहनीय है। कृष्ण बिहारी मिश्र ने 'ज्यों की त्यों धरि दिनी चदरिया' शीर्षक संस्मरण में पंडित विष्णुकांत शास्त्री को स्मृति में लाकर उनके स्वभाव से समाज को परिचित कराया है।

संस्मरण साहित्य का विकास क्रम निरंतर साहित्यकारों के कलम द्वारा आगे बढ़ता रहा। कान्तिकुमार जैन ने इस विलास प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हुए लिखा है 'श्यामाचरण दुबेः प्रोफेसर डिलक्स' यह शीर्षक संस्मरण प्रोफेसर श्यामाचरण दुबे के स्वभाव को रेखांकित करता है तथा साथ ही साथ समाज के समक्ष प्रोफेसर श्यामाचरण दूबे की प्रस्तुति होती है।

संस्मरण साहित्य के विकास क्रम में निरंतर साहित्यकारों का सर्जनात्मक प्रयास होता रहा है।

रेखा जैन ने संस्मरण साहित्य के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। संस्मरण साहित्य के विकास में 'युद्धरत आम आदमी' का बहुत बड़ा योगदान है। रमणिका गुप्ता ने 'युद्धरत आम आदमी' के माध्यम से कथा साहित्य को बहुत ही समृद्ध किया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि संस्मरण साहित्य का विकास हिन्दी की प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिका 'सरस्वती' के माध्यम से होता है। संस्मरण रूचि बीज सरस्वती पत्रिका में अंकुरित होकर पल्लवित पुष्पित हुआ। परन्तु आज यह साहित्यरूपी उपवन का सुन्दर कानून बन गया है। संस्मरण साहित्यरूपी इस कानून को सींचने में आचार्य विष्णुकान्त शास्त्री का महत्वपूर्ण योगदान है। इन्होंने आजीवन अपने संस्मरणों को शब्दों के माध्यम से पृष्ठों पर अंकित कर अपने पाठकों तक प्रेषित करते रहें। इनके इस प्रयास ने साहित्य में संस्मरण का एक विशाल भण्डार भर दिया है, जो समय–समय पर हमें उनके स्मृतियों से गुजरते रहने का अवसर प्रदान करेगा।

सन्दर्भ सूची

1. सं. डॉ माजदा असद, गद्य की नयी विधाएँ, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–1990, पृ. 43–44.
2. सं. डॉ माजदा असद, गद्य की नयी विधाएँ, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–1990, पृ. 49.
3. सं. डॉ माजदा असद, गद्य की नयी विधाएँ, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–1990, पृ. 112.
4. सं. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स, तीसवां संस्करण–2004, पृ. 522.
5. सं. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स, तीसवां संस्करण–2004, पृ. 597
6. सं. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स, तीसवां संस्करण–2004, पृ. 597
7. सं. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स, तीसवां संस्करण–2004, पृ. 725
8. विष्णुप्रभाकर, गाँव का मन, साहित्य अमृत (मासिक), संस्थापक संपादक–स्व. पं. विद्यानिवास, अंक मार्च–अप्रैल 2005, पृ. 9.
9. विष्णुकान्त शास्त्री, लोक और शास्त्र के संगम, साहित्य अमृत (मासिक), संस्थापक संपादक–स्व. पं. विद्यानिवास, अंक मार्च–अप्रैल 2005, पृ. 11

स्वास्थ्य सुरक्षा में खान–पान, साफ–सफाई का महत्व – एक अध्ययन

डॉ. सुमन कुमारी*

शोध सार -

स्वास्थ्य सुरक्षा में खान-पान का महत्व अत्यधिक है क्योंकि संतुलित आहार शरीर को रोग प्रतिरोधक क्षमता प्रदान करता है, जीवनशैली संबंधी रोगों से बचाता है और मानसिक स्वास्थ्य को भी सुदृढ़ करता है। सही खान-पान न केवल व्यक्तिगत स्वास्थ्य बल्कि समाज की समग्र स्वास्थ्य सुरक्षा के लिए भी आधारभूत भूमिका निभाता है

सफाई मनुष्य जीवन और मानवीय सभ्यता का अविभाज्य अंग है। हिन्दू धर्म ही नहीं, हर एक धर्म में सफाई की और निर्देश करने वाले आचार वर्णित हैं। अंग्रेजी में कहावत है-"सज्जनता के बाद स्वच्छता का ही स्थान है।" रस्किन ने शिक्षा की व्याख्या करते हुए लिखा है कि -"हवा, पानी और मिट्टी का ठीक ढंग से उपयोग करना ही शिक्षा है।"

मुख्य शब्द - स्वास्थ्य सुरक्षा योजना, खान- पान,जीवनशैली, साफ-सफाई आदि

सारांश - स्वास्थ्य सुधार की पहल करते हुए प्रधानमंत्री स्वास्थ्य सुरक्षा योजना (PMSSY) भारत सरकार की एक महत्त्वपूर्ण पहल की शुरुयातकी गई जिसका उद्देश्य देशभर में तृतीयक स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता बढ़ाना और मेडिकल शिक्षा को सुदृढ़ करना है। इस योजना का सबसे बड़ा प्रभाव यह रहा कि देश के विभिन्न हिस्सों में नए **AIIMS संस्थान** स्थापित हुए और कई सरकारी मेडिकल कॉलेजों का उन्नयन किया गया। इससे ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों में भी उच्चस्तरीय स्वास्थ्य सुविधाएँ पहुँच सकीं। पहले जहाँ केवल बड़े महानगरों में ही सुपर-स्पेशलिटी इलाज उपलब्ध था, वहीं अब छोटे शहरों और दूरस्थ इलाकों में भी आधुनिक चिकित्सा सेवाएँ उपलब्ध हो रही हैं।

इस योजना के अंतर्गत 22 AIIMS संस्थानों की स्थापना की गई, जिनमें से कई पूरी तरह कार्यरत हैं और कुछ अभी निर्माणाधीन हैं। इन संस्थानों ने न केवल स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच बढ़ाई है बल्कि मेडिकल शिक्षा में भी क्रांतिकारी बदलाव लाए हैं। MBBS, Nursing और PG सीटों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, जिससे देश में डॉक्टरों और विशेषज्ञों की कमी को दूर करने में मदद मिली है। इसके अलावा, कई सरकारी मेडिकल कॉलेजों में सुपर-स्पेशलिटी ब्लॉक और ट्रॉमा केयर सेंटर स्थापित किए गए हैं, जिससे गंभीर बीमारियों और दुर्घटनाओं के मामलों में त्वरित और बेहतर इलाज संभव हुआ है।

PMSSY का एक और बड़ा प्रभाव यह रहा कि इसमें **नवाचार सेवाएँ** भी शामिल की गईं। उदाहरण के लिए, AIIMS ऋषिकेश में हेलिकॉप्टर इमरजेंसी मेडिकल सर्विस (HEMS) शुरू की गई, जिससे ट्रॉमा पीड़ितों को तेजी से चिकित्सा सुविधा मिलती है। इसी तरह, ड्रोन सेवा के माध्यम से दूरस्थ क्षेत्रों में दवाइयाँ और लैब सैंपल पहुँचाए जा रहे हैं। इन नवाचारों ने स्वास्थ्य सेवाओं को और अधिक सुलभ और आधुनिक बनाया है।

हालाँकि, इस योजना के सामने कुछ चुनौतियाँ भी हैं। कई AIIMS संस्थानों का निर्माण अभी अधूरा है और उनमें आवश्यक मानव संसाधन की कमी है। विशेषज्ञ डॉक्टरों और प्रशिक्षित स्टाफ की उपलब्धता सीमित होने के कारण सेवाओं की गुणवत्ता पर असर पड़ता है। इसके अलावा, संचालन और मानव संसाधन की लागत राज्यों को वहन करनी होती है, जिससे राज्य सरकारों पर अतिरिक्त भार पड़ता है।

* समाजशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

फिर भी, समग्र रूप से देखा जाए तो PMSSY ने भारत में स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच और गुणवत्ता को उल्लेखनीय रूप से बढ़ाया है। ग्रामीण और दूरस्थ क्षेत्रों में अब सुपर-स्पेशलिटी इलाज संभव हुआ है, जिससे आम जनता को लाभ मिला है। मेडिकल शिक्षा को भी मजबूती मिली है और देश में स्वास्थ्य क्षेत्र का ढाँचा अधिक सुदृढ़ हुआ है। इस योजना ने स्वास्थ्य क्षेत्र में क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने में अहम भूमिका निभाई है और भारत को एक मजबूत स्वास्थ्य प्रणाली की ओर अग्रसर किया है।

मोहन जोदड़ों की खुदाई से ज्ञात होता है कि ईसा से 2000 वर्ष पहले भी सफाई के लिए नालियाँ होती थीं। क्लोसास तथा ट्राय के पराजय से पूर्व ही मिश्र के पुराने शहरों में भी नालियों का उपयोग किया जाता था। हिन्दुधर्म में तो शुचिता को- प्रमुख स्थान ही दिया गया है, पर आजकल हमारे सामूहिक जीवन में गन्दगी ने पूरी तरह डेरा डाल लिया है। सफाई की जरूरत जीवन में आरंभ से अन्त तक है इसलिए उसका बुनियादी प्रशिक्षण भी लोगों को मिलना चाहिए, आरोग्य के लिए भी सफाई बहुत जरूरी है। बड़े रोगों और बुखार, खुजली तथा छोटे रोगों का असली कारण अस्वच्छता ही है, उसे दूर करके ही स्वास्थ्य संरक्षण किया जा सकता है।

हमें अपनी सभ्यता और संस्कृति की श्रेष्ठता की रक्षा करनी है तो सफाई पर ध्यान देना ही होगा, स्वास्थ्य और आरोग्य की रक्षा के लिए भी वह आवश्यक है। आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए भी सफाई का सर्वोपरि महत्व है। इसलिए उसकी व्यावहारिक जानकारी भी बहुत आवश्यक है।

स्वास्थ्य सुरक्षा के लिए महत्व्य्पूर्ण बातें

पोषण संतुलन - संतुलित आहार शरीर को आवश्यक पोषक तत्व (प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, विटामिन, खनिज) प्रदान करता है। यह रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है और संक्रमण से बचाव करता है।

जीवनशैली रोगों की रोकथाम - असंतुलित खान-पान से मधुमेह, उच्च रक्तचाप, मोटापा और हृदय रोग जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। सही खान-पान इन रोगों की रोकथाम में सहायक है।

मानसिक स्वास्थ्य - पौष्टिक भोजन मस्तिष्क की कार्यक्षमता और मानसिक स्थिरता को बनाए रखता है। ओमेगा-3 फैटी एसिड, विटामिन बी और एंटीऑक्सीडेंट मानसिक स्वास्थ्य के लिए विशेष रूप से लाभकारी हैं।

सामाजिक स्वास्थ्य सुरक्षा - सामुदायिक स्तर पर पोषण योजनाएँ (जैसे *आयुष्मान भारत, मिड-डे मील योजना*) समाज के कमजोर वर्गों को स्वास्थ्य सुरक्षा प्रदान करती हैं।

स्वास्थ्य सुरक्षा की चुनौतियाँ और समाधान

कुपोषण - ग्रामीण क्षेत्रों में पोषण की कमी स्वास्थ्य सुरक्षा को प्रभावित करती है।

आज जिस तेज गति से जनसँख्या बढ़ रही है खाद्दान्न का उत्पादन नही हो रहा है । लोगो की आव्श्यकाओं की पूर्ति तो किसी तरह हो रहो है परन्तु पोषण युक्त भोजन नही मील पा रहा है

फास्ट फूड संस्कृति - आज गाव हो या शहर फ़ास्ट फ़ूड संस्कृति तेज गति से बढ़ रही है। शहरी क्षेत्रों में अस्वास्थ्यकर भोजन की आदतें ज्यादा बढ़ रही हैं।

सरकारी योजनाएँ - प्रधानमंत्री स्वास्थ सुरक्षा योजना)PMSSY) और आयुष्मान भारत जैसी योजनाएँ स्वास्थ्य सेवाओं और पोषण सुरक्षा को मजबूत करती हैं।

स्वास्थ्य सुरक्षा में खान-पान का महत्व अत्यधिक है क्योंकि संतुलित आहार शरीर को रोग प्रतिरोधक क्षमता प्रदान करता है, जीवनशैली संबंधी रोगों से बचाता है और मानसिक स्वास्थ्य को भी सुदृढ़ करता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन का मानना है की संतुलित आहार रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है। जिससे व्यक्ति में रोग बीमारी नही आती ।

भारतीय पोषण परिषद के अनुसार भारत में कुपोषण स्वास्थ्य सुरक्षा की बड़ी चुनौती है। इसके लिए मिलकर कम करना होगा ।

आयुष्मान भारत योजना और मिडडे मील- - ये योजनाएँ सामुदायिक पोषण सुरक्षा को मजबूत करती हैं परन्तु स्वार्थवश जितनी राशि योजना के लिए सरकार देती है उतनी खर्च नही होती ।

विभिन्न शोधों में पाया गया कि फास्ट फूड संस्कृति शहरी क्षेत्रों में स्वास्थ्य जोखिम बढ़ा रही है। संतुलित और पौष्टिक खान-पान स्वास्थ्य सुरक्षा का आधार है। यह न केवल व्यक्तिगत स्वास्थ्य बल्कि समाज की सामूहिक सुरक्षा के लिए भी आवश्यक है। सही खान-पान से जीवनशैली रोगों की रोकथाम, मानसिक स्वास्थ्य की मजबूती और सामाजिक कल्याण सुनिश्चित होता है।

2. संतुलित आहार और स्वास्थ्य सुरक्षा

संतुलित आहार में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, विटामिन और खनिज उचित मात्रा में शामिल होते हैं।

प्रोटीन मांसपेशियों की मजबूती और रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है।

कार्बोहाइड्रेट ऊर्जा का मुख्य स्रोत है।

मानसिक स्वास्थ्य पर भी खान-पान का गहरा प्रभाव पड़ता है।

ओमेगा-3 फैटी एसिड मस्तिष्क की कार्यक्षमता को बढ़ाता है।

विटामिन बी समूह तनाव और अवसाद को कम करता है।

एंटीऑक्सीडेंट मानसिक स्थिरता बनाए रखते हैं।

संतुलित आहार मानसिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ करता है और जीवन की गुणवत्ता को बेहतर बनाता है।

निष्कर्ष - भारत में स्वास्थ्य सुरक्षा को मजबूत करने के लिए कई योजनाएँ चलाई जा रही हैं।

मिड-डे मील योजना बच्चों को पौष्टिक भोजन प्रदान करती है।

आयुष्मान भारत योजना गरीब और कमजोर वर्गों को स्वास्थ्य सेवाएँ उपलब्ध कराती है।

संतुलित आहार व्यक्तिगत और सामुदायिक स्वास्थ्य सुरक्षा के लिए आवश्यक है। असंतुलित खान-पान स्वास्थ्य जोखिमों को बढ़ाता है। मानसिक स्वास्थ्य पर भी खान-पान का गहरा प्रभाव पड़ता है। सरकारी योजनाएँ समाज के कमजोर वर्गों को स्वास्थ्य सुरक्षा प्रदान करती हैं।

स्वास्थ्य सुरक्षा का आधार संतुलित और पौष्टिक खान-पान है। यह न केवल व्यक्तिगत स्वास्थ्य बल्कि समाज की सामूहिक सुरक्षा के लिए भी आवश्यक है। सही खान-पान से जीवनशैली रोगों की रोकथाम, मानसिक स्वास्थ्य की मजबूती और सामाजिक कल्याण सुनिश्चित होता है।

WHO और ICMR दोनों संतुलित आहार को स्वास्थ्य सुरक्षा का आधार मानते हैं। भारतीय समाज में कुपोषण एक बड़ी चुनौती है। शहरी क्षेत्रों में फास्ट फूड संस्कृति स्वास्थ्य जोखिम बढ़ा रही है। सामुदायिक योजनाएँ कमजोर वर्गों को पोषण सुरक्षा प्रदान करती हैं।

सन्दर्भ सूची

1. शर्मा, डॉ. (2022).स्वास्थ्य सुरक्षा योजना एवं साफ-सफाई. नेशनल पब्लिशिंग हाउस.
2. World Health Organization. (2021). *Nutrition and health*. WHO Publications.
3. Indian Council of Medical Research. (2020). *Dietary guidelines for Indians*. ICMR.
4. Ministry of Health and Family Welfare. (2019). *Ayushman Bharat Programme*. Government of India.
5. Gupta, R., & Misra, A. (2018). *Lifestyle diseases and nutrition in India*. Journal of Public Health.
6. Singh, P. (2022). Role of balanced diet in preventive healthcare. Inter

ಌ

नेपाली की काव्य चेतना

मुकेश कुमार*

शोध-सार :

गोपाल सिंह 'नेपाली' बहुआयामी प्रतिभा के धनी व्यक्ति है। बहुआयामी तत्व उनके रचना क्षेत्र में झलकता है।उनका योगदान साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में दिखता है–पत्रकारिता, फिल्मी गीत, और कविता आदि में उनका महत्वपूर्ण योगदान है। कुछ गद्य रचना भी प्राप्त हुई है। नेपाली ने रचना कर्म जब शुरू किया तो उनके सामने एक ओर छायावाद जैसी स्थापित और लोकप्रिय काव्यधारा थी तो दूसरी ओर प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और हालावाद जैसी उभरती धारा। उन्हें न तो छायावाद का रुदन करना पसंद था और न ही प्रयोग के नाम पर मनोविकारों को अभिव्यक्त करना। वे हालावादियों की हाला को अपने होठों से लगाकर उर्दू प्रभावित कविता से भी स्वयं को दूर रखा। वे उमंग के कवि थे जो एक ओर रागनियों से जुड़ना पसंद करते थे तो दूसरी ओर हिमालय की पुकार सुन उस उसके साथ खड़ा होकर जनता का आह्वान करते थे। वैचारिक रूप से उनकी कविता किसी खास विचारधारा का पल्लू पकड़कर नहीं चलती थी। यही कारण है कि कभी वे गांधीवादी बन जाते हैं तो कभी मार्क्सवादी कभी राष्ट्रवादी बनकर राष्ट्र को स्वर देते हैं। उनके काव्य में सामाजिक, राष्ट्रीय, प्रगतिशील और लोक चेतना भी दिखता है। इससे यह मालूम पड़ता है कि वह कितने जागरूक कवि और साहित्यकार हैं। वे समाज से कुछ लेते हीं नहीं बल्कि समाज को कुछ प्रदान करनेवाले कवि भी है। नेपाली के काव्य में जागरूकता और समाज के प्रति उत्तरदायित्व झलकता है।

बीज शब्द : छायावाद,छायावादोत्तर, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, हालावाद, मार्क्सवादी, मनोविकार

छायावादोत्तर हिंदी कविता के प्रतिनिधि कवि गोपाल सिंह 'नेपाली' की प्रखरकाव्य चेतना के कवि है।उनका जन्म बिहार के पश्चिम चंपारण जिला में सन् 1911 में जन्माष्टमी के दिन हुआ था। इसीलिए इनका नाम गोपाल पड़ा। उनके पूर्वज नेपाल से आकर भारत बसे थे इसलिए वे लोग अपने नाम में नेपाली शब्द का प्रयोग करते थे। वे आरंभ में गाँधी से प्रभावित थे और साहित्य में उनकी गहरी रूचि थी। उन्होंने पहली कविता ....

उनका पहला काव्य-संग्रह 'उमंग' 1934 में प्रकाशित हुआ। उनके अन्य काव्य संग्रह हैं—

इन संग्रहों की कविता में नेपाली का एक द्वंद्व नज़र आता है कभी वे गांधीवाद के करीब जाते दीखते हैं तो कभी उससे इतर अहिंसा छोड़ आन्दोलन को भी स्वतंत्रता के लिए स्वीकार करते दीखते हैं। इन सबके बावजूद उनमें एक द्वंद्व नहीं है कि मनुष्य के लिए और देश के लिए सबकुछ सिर्फ स्वतंत्रता है।यही कारण है कि वे लिखते हैं कि 'सिद्धांत धर्म कुछ और चीज है आज़ादी है कुछ और।'कविता में जागरूकता दिखती है। मन में उठने वाली भावनाएँ और संवेदनाएँ शब्दों में पिरोकर कविता के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। यह अभिव्यक्ति उनकी काव्य-चेतना द्वारा निर्धारित होती है। उनकी काव्य-चेतना का निर्माण औपनिवेशिक भारत में होता है और स्वतंत्र भारत की स्वतंत्रता बनी रहे इस चेतना के साथ ही विकसित होते रहता है।

जैसा कि हम जानते हैं कि नेपाली का जन्म एक गुलाम भारत में हुआ था। उस समय देश अपनी मुक्ति के लिए संघर्षरत था। एक तरफ गांधी सत्य अहिंसा को आधार बना कर जन-जन को जोड़ रहे थे तो दूसरी ओर भगत सिंह, बोस जैसे नेता आजादी हेतु अपनी आहुति देने को आतुर थे। नेपाली भी इस क्रांति में अपनी कविता के माध्यम से सहयोग करते हैं--

गोपाल सिंह नेपालीके काव्य में राष्ट्रीय चेतना को प्रखर रूप से अभिव्यक्त हुई है। इनके काव्य में विभिन्न स्थान पर राष्ट्र के प्रति राष्ट्र-प्रेम और राष्ट्रीयता का भाव दिखाई पड़ता है। देशवासियों के अंदर राष्ट्रप्रेम और देशभक्ति जगाने का एक सफल प्रयास किया। इससे यह पता लगता है कि नेपाली राष्ट्रभक्त थे। कवि द्वारा विभिन्न स्थनों पर स्वाधीनता आंदोलन में भाग लेने वाले व्यक्ति का उल्लेख किया। नेपाली ने गाँधी पर अनेक कविताएं लिखी है।

"भारत, यह तरुणों का भारत
नाच उठे अब चुटकी पर
पल में क्या काक्या कर दे फिर
मोहन, मेरी मटकी पर"[1]

* शोधार्थी(यूजीसी नेट), बाबासाहेब भीमराव अंबेदकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

गाँधी जी के महत्व को रेखांकित करते हुए-

"गाँधी जी ने क्रांति समर को नई दिशा दी, नया मोड़
कहा, प्रेम से सत्याग्रह, व्यक्ति छोड़, कानून तोड़
धर्म भुलाकर आज एक हो
जाटी मिटाकर आज एक हो
राष्ट्र एक हो, राज्य एक हो
जनता की आवाज एक हो?
एक हुये जो अमर रहे वह, बिखरे, गलते चले गए
लिया स्वराज अहिंसा से इतिहास बदलते चले गए"[2]

वही दूसरी तरफ 1962 के युद्ध में निराश के वजह से लोगों के अंदर हताश भरी थी। लोगों के अंदर वीररस प्रधान कविता से लोगों को प्रेरित किया।

"कह रहे यही है दिग-दिगंत,
ओ चीन संभल अबनिकट अंत।"[3]

राष्ट्र के निर्माण के लिए जन मानस को नवीन कल्पना के लिए उत्साहित कर रहे है नेपाली अपने काव्य सेराष्ट्रीय भावना को जागा रहे थे।

"निज राष्ट्र के शरीर के सिंगार के लिए
तुम कल्पना करो, नवीन कल्पना करो,
तुमकल्पनाकरो"[4]

लोक चेतना :

लोक जीवन को अपने काव्य में दिखाने वाले प्रमुख रचनाकारों में से एक हैं। इसीलिए इन्हें प्रमुख लोक चेतना का कवि माना जाता है। लोक से तात्पर्य – लोक, संसार और जगत और चेतना से अभिप्राय है – संज्ञा, जीवन, प्राण और सजीवता। अनुभूतियों के आधार पर साहित्यकार की चेतना बनती और बिगड़ती है।डॉ . सतीश कुमार राय के शब्दों में " नेपाली का काव्य निर्विवाद रूप से लोक संवेदना का काव्य है, लोक जीवन के गहरे साक्षात्कार का काव्य है।"[5]

"कवि ने जो कुछजाना
कवि ने जो पहचाना
बनता है वह छंद-छंद में प्राण –प्राण का गाना
हृदय-हृदय का गाना
लोक-लोक का गाना
बनता है वह भाव लहर में उठता हुआ जमाना।।"[6]

वे स्वयं को समाज का एक अंग मानकर अपने आपको सामाजिक गतिशीलता में शामिल कर लेते है।

प्रगतिशील चेतना :

नेपाली प्रगतिशील विचारधारा के कवि है। प्रगतिशीलता उनके काव्य और उनकी साहित्यिक कृति में भी झलकता है।"नेपाली की राष्ट्रीयता का गर्जन-तर्जन वाली इकहरी नहीं है उसमें वह नई सामाजिक चेतना भी व्यपाक तथा गहरे रूप में समाविष्ट है।"[7]

नेपाली की प्रगतिशील चेतना 'पंचमी' में भी अभिव्यक्त हुई है-

"युग मानव की मती में बोलो
संघ संघ की गति में बोलो
कविता जाग रही, तुम जागो
जीवन की जागृति में बोलो
फुटो तुम कवि की वाणी से
तोड़ो तुम पत्थर की कारा"[8]

काव्य संग्रह उमंग में भी प्रगतिशील चेतना का साक्ष्य दे देते है।

"है जीवन हम, हैं यौवन के उन्माद हमी
जो हिला डुला दे दुनिया को उस विप्लव के सिंघनाद हमीं
जिस पर अवलंबित क्रांति प्रबल वह पत्थर की बुनियाद हमीं
जिसमें है साहस, शक्ति भरी वह ब्रह्मा की ईजाद हमीं।[9]
नेपाली ने नवीन समाज के निर्माण की बात भी की।
" अब घिस गई समाज कीतमाम नीतियाँ
अब घिस गई मनुष्य की अतीत रीतियाँ
है दे रही चुनौतियाँ तुम्हें कुरीतियाँ
निज राष्ट्र के शरीर के सिंगार"[10]

राजनीतिक चेतना :-

जिस तरह भाषा अभिव्यक्ति का सर्वोत्तम माध्यम होता है, उसी प्रकार साहित्य समाज की अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त माध्यम है। "जनता की चितवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, सांप्रदायिक, तथा धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है।"[11]इन सभी परिस्थितियों का सामंजस्य स्थापित करना साहित्यकार का परमलक्ष्य माना जाता है। अगर इन परिस्थितियोंमें कुछ बदलाव या कमी होती है तो कवि उसकी अभिव्यक्ति करता चलता है। समाज में रहने वाला व्यक्ति राजनीतिक,नीति और शासन से अछूता नहीं होता उसी प्रकार साहित्यकार भी।तत्कालीन समय में गोपाल सिंह नेपाली के काव्य में राजनीतिक चेतना प्रखर रूप से दिखती है।नेपाली को अलग-अलग संदर्भों का कवि माना जाता है। लेकिन नेपाली के काव्य में राजनीतिक चेतना प्रखर रूप में अभिव्यक्ति हुई हैं। जो समाज को नई उद्देश की तरफ अग्रसारित करता है। और राजनीतिक चिंतन की अभिव्यक्ति देते है। जैसे स्वागत, स्वतंत्रता की ओरऔर सत्याग्रह आदि कविता के माध्यम से।

राष्ट्रीय आन्दोलन में मे पूरे देश की सहभागिता को रेखांकित करते है –

आज यहाँ का बच्चा-बच्चा पिटने का अभिमानी है
देश दंग है देख देखकर, यह कैसी कुर्बानी है
न्यौछावर आजादी पर युवकों की मस्त जवानी है
बूढ़ों की अब जीर्ण जरा भी पगली है, दीवानी है।
अब स्वतंत्र होने की भारत के कण –कण ने ठानि है
आज कही जाती दुनिया में घर-घर यह कहानी है।
अब स्वतंत्रता की कीमत इस भारत ने पहचानीहै।"[12]

भारत जब परतंत्र था उस समय की राजनीति मुश्किलों की व्याख्या और सभी को एकत्रित करने का प्रयास कवि द्वारा मालूम पड़ता है। एकता के साथ आजादी आंदोलन में भाग लेना और सभी लोग अपने तरफ से एक प्रयास करें, उसके लिए कवि ने महत्वपूर्ण प्रयास किया है।

नेपाली के काव्य में देखा जाता है किपड़ोसी देशों की राजनीति पर उनकी पैनी दृष्टि है जो उनके काव्य में जान पड़ता हैं।ऐसा लगता है कि पाकिस्तान की स्थिति की व्याख्या है

"होता है धन खर्च पुलिस पर, या सेना पर, हथियारों पर या अन्तःपुर की 'चिड़ियों' पर, वायुयान मोटरकारों पर ऐसे हैं ये प्रजातंत्र, नर जहाँ कई पत्नी रख लेता नारी पर अत्याचारों का, यहाँ अभाव नहीं होता है जनता चिल्लाती रहती है, मगर चुनाव नहीं होता है डरते भी हैं, कहीं न जनता, करदे क्रान्ति, उलट दे तख्ता फिर चुनाव जो हो जाये तो, पापी स्वाद पाप का चखता दोनों आफत से बचने का, एक उपाय मंत्रिमण्डल है ऐसी मंत्री का जनता से, तनिक लगाव नहीं होता है जनता चिल्लाती रहती है, मगर चुनाव नहीं होता है।"[13]

गोपाल सिंह नेपाली के काव्य में विभिन्न प्रकार की काव्य चेतना मिलती है जिनमें सेकुछ का उल्लेख उपर्युक्त किया गया है। नेपाली का काव्यसमाज को नई दिशा प्रदान करता है। उनकी कविता सामाजिक मूल्यों को भी लेकर चलता है साथ ही भारतीय ग्रामीण संस्कृति का वाहक भी है।

संदर्भ सूची –

1- नेपाली : चिंतन-अनुचिंतन, स. डॉ. सतीश कुमार राय, समीक्षा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर (बिहार), प्रथम संस्करण, 2009, पृष्ठ संख्या – 169
2- वही पृष्ठ संख्या- 169 -170
3- अलाव (गोपाल सिंह नेपाली –जन्मशती विशेषांक), स. रामकुमार कृषक, अंक 31 (मार्च-अप्रैल), 2012, पृष्ठ संख्या – 8
4- वही पृष्ठ संख्या 9
5- नेपाली : चिंतन-अनुचिंतन, स. डॉ. सतीश कुमार राय, समीक्षा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर (बिहार), प्रथम संस्करण, 2009, पृष्ठ संख्या – 49
6- वही पृष्ठ संख्या 48
7- गोपाल सिंह नेपाली, सं. नन्दकिशोर नंदन, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2013, पृष्ठ संख्या- 11
8- पंचमी, गोपाल सिंह नेपाली, सं. नन्दकिशोर नंदन, साहित्य संसद ,नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2011, पृष्ठ संख्या- 22
9- नेपाली : चिंतन-अनुचिंतन, स. डॉ. सतीश कुमार राय, समीक्षा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर (बिहार), प्रथम संस्करण, 2009, पृष्ठ संख्या –90
10- वही पृष्ठ संख्या 92
11- हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, श्री प्रकाशन, नई दिल्ली, (नवीन संस्करण),
12- नेपाली : चिंतन-अनुचिंतन, स. डॉ. सतीश कुमार राय, समीक्षा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर (बिहार), प्रथम संस्करण, 2009, पृष्ठ संख्या –140
13- वहीं पृष्ठ संख्या 142

मोहन राकेश के नाटकों में समकालीन बोध

डॉ. आनंद कुमार गोंड*

भूमिका

आधुनिक हिंदी नाट्य साहित्य में मोहन राकेश का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण और विशिष्ट है, क्योंकि उन्होंने नाटक को केवल मनोरंजन या ऐतिहासिक प्रस्तुति तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे समकालीन जीवन की जँटिलताओं और मनोवैज्ञानिक यथार्थ से जोड़ा। उनके नाटकों में व्यक्ति और समाज के बीच उत्पन्न तनाव, संबंधों की टूटन, अस्तित्व की खोज और आधुनिक जीवन की विडंबनाएँ अत्यंत सजीव रूप में सामने आती हैं। इस प्रकार, उनका नाट्य–साहित्य आधुनिक युग के संवेदनशील बौद्धिक मनुष्य की अभिव्यक्ति बन जाता है।

समकालीन बोध का अर्थ केवल वर्तमान समय का चित्रण नहीं है, बल्कि वह उस युग की चेतना, उसके द्वंद्वों, उसके संकटों और उसकी मानसिक संरचना को समझने और अभिव्यक्त करने की क्षमता है। मोहन राकेश के नाटकों में यह बोध केवल बाहरी घटनाओं तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह व्यक्ति के भीतर चल रहे मानसिक संघर्षों तक पहुँचता है। उनके पात्र केवल सामाजिक परिस्थितियों के प्रतिनिधि नहीं हैं, बल्कि वे अपने भीतर के असंतोष, अकेलेपन और अस्थिरता से जूझते हुए दिखाई देते हैं।

उदाहरण स्वरूप, आधे–अधूरे में परिवार के संबंधों का विखंडन और मध्यवर्गीय जीवन की असंतुष्टि बहुत मार्मिक रूप में दिखाई देती है। परिवार का कोई भी सदस्य पूर्ण संतुष्टि नहीं पाता, जिससे आधुनिक जीवन की आंतरिक रिक्तता उभरती है।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि मोहन राकेश ने अपने नाटकों में परंपरागत आदर्शों और आधुनिक जीवन की वास्तविकताओं के बीच उत्पन्न संघर्ष को विशेष रूप से उभारा है। उनके यहाँ न तो अतीत का अंधानुकरण है और न ही आधुनिकता का अंध–स्वीकार, बल्कि एक सतत प्रश्नाकुलता और खोज की प्रवृत्ति है।

उदाहरण स्वरूप, आषाढ़ का एक दिन में कालिदास के माध्यम से यश और प्रेम के बीच द्वंद्व को प्रस्तुत किया गया है। यह नाटक बताता है कि बाह्य सफलता के बाद भी मनुष्य आंतरिक रूप से संतुष्ट नहीं रह पाता।

मोहन राकेश के नाट्य–साहित्य को समझने के लिए यह भी आवश्यक है कि उसे उस समय की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में रखा जाए, जब भारतीय समाज तीव्र परिवर्तन के दौर से गुजर रहा था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जहाँ एक ओर नए आदर्शों और संभावनाओं का उदय हुआ, वहीं दूसरी ओर जीवन में असंतुलन, असंतोष और मूल्य–संकट की स्थिति भी उत्पन्न हुई।

उनकी दृष्टि में समकालीन जीवन की सबसे बड़ी विशेषता उसका विखंडन है। व्यक्ति अपने संबंधों, अपने परिवेश और यहाँ तक कि स्वयं से भी कटता हुआ दिखाई देता है।

उदाहरण स्वरूप, लहरों के राजहंस में संसार और वैराग्य के बीच झूलते मन की जटिलता का चित्रण है। यह नाटक मनुष्य के आंतरिक संकट को गहराई से व्यक्त करता है।

यह भी उल्लेखनीय है कि उनके नाटकों में भाषा और संवाद का प्रयोग अत्यंत प्रभावशाली है। संवाद केवल कथानक को आगे बढ़ाने का साधन नहीं हैं, बल्कि वे पात्रों की मानसिक स्थिति, उनके अंतर्द्वन्द्व और उनके संबंधों की जँटिलता को उजागर करते हैं।

इसके साथ ही, यह भी देखा जा सकता है कि उनके नाटक किसी आदर्श समाधान की ओर संकेत नहीं करते। वे जीवन की समस्याओं को ज्यों का त्यों प्रस्तुत करते हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि आधुनिक जीवन की जँटिलताओं का कोई सरल समाधान नहीं है।

* सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, उदित नारायण पी.जी. कॉलेज पडरौना, कुशीनगर
Email Id- anand.hindi91@gmail.com

अंततः यह कहा जा सकता है कि मोहन राकेश के नाटकों की भूमिका एक ऐसे वैचारिक और संवेदनात्मक परिदृश्य का निर्माण करती है, जहाँ समकालीन बोध केवल एक विषय नहीं, बल्कि एक गहन अनुभव बनकर उभरता है। यही अनुभव आगे के विश्लेषण के लिए आधार प्रदान करता है।

व्यक्ति का अस्तित्व और अकेलापन

मोहन राकेश के नाटकों में आधुनिक व्यक्ति का जो स्वरूप उभरकर सामने आता है, उसकी सबसे प्रमुख विशेषता उसका गहरा अकेलापन और अस्तित्वगत संकट है। यह अकेलापन केवल भौतिक या सामाजिक दूरी का परिणाम नहीं है, बल्कि यह मनुष्य के भीतर उत्पन्न एक मानसिक और भावनात्मक स्थिति है, जहाँ वह अपने ही जीवन, अपने संबंधों और अपनी पहचान के प्रति असंतोष अनुभव करता है। इस प्रकार, उनके नाटकों में व्यक्ति का संघर्ष बाहरी परिस्थितियों से अधिक अपने भीतर के द्वंद्व से जुड़ा हुआ दिखाई देता है।

उदाहरण स्वरूप, आधे–अधूरे में परिवार के सभी सदस्य एक ही घर में रहते हुए भी एक–दूसरे से मानसिक रूप से दूर दिखाई देते हैं। सावित्री, महेन्द्रनाथ, अशोक और बिन्नी सभी अपने–अपने तरह से असंतुष्ट हैं। यह दर्शाता है कि साथ रहने से ही आत्मीयता उत्पन्न नहीं होती।

उनके प्रसिद्ध नाटकों–जैसे आधे–अधूरे और आषाढ़ का एक दिन–में पात्रों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि आधुनिक जीवन में व्यक्ति अपने संबंधों के बीच रहते हुए भी एक प्रकार की दूरी और अलगाव का अनुभव करता है। वह परिवार और समाज का हिस्सा होते हुए भी उनसे पूर्णतः जुड़ नहीं पाता। यह स्थिति इस बात का संकेत है कि आधुनिकता ने जहाँ बाहरी सुविधाएँ और स्वतंत्रता प्रदान की है, वहीं उसने संबंधों की गहराई और स्थिरता को भी प्रभावित किया है।

उदाहरण स्वरूप, आषाढ़ का एक दिन में कालिदास यश और प्रतिष्ठा प्राप्त करने के बाद भी आंतरिक शांति नहीं पाता। वह मल्लिका से दूर होकर अपनी सफलता के बाद भी खालीपन का अनुभव करता है।

इस संदर्भ में व्यक्ति का अस्तित्व एक महत्वपूर्ण प्रश्न बनकर उभरता है। वह यह जानना चाहता है कि उसकी वास्तविक पहचान क्या है और वह अपने जीवन का उद्देश्य किस प्रकार निर्धारित करे। यह खोज उसे निरंतर अस्थिर और बेचैन बनाए रखती है। मोहन राकेश इस बेचैनी को अत्यंत सूक्ष्मता से पकड़ते हैं और उसे अपने पात्रों के संवादों और व्यवहार के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं।

यह भी देखा जा सकता है कि उनके पात्र किसी निश्चित निष्कर्ष तक नहीं पहुँचते, बल्कि वे निरंतर प्रश्नों और असमंजस की स्थिति में बने रहते हैं। यही स्थिति उनके नाटकों को यथार्थ के अधिक निकट बनाती है, क्योंकि वास्तविक जीवन में भी व्यक्ति को अपने प्रश्नों के स्पष्ट उत्तर नहीं मिलते। इस प्रकार, उनके नाटकों में व्यक्ति का अकेलापन एक गहरे मानवीय अनुभव के रूप में सामने आता है।

व्यक्ति के इस अकेलेपन और अस्तित्वगत संकट का विश्लेषण करते समय यह भी स्पष्ट होता है कि यह स्थिति केवल व्यक्तिगत कमजोरी का परिणाम नहीं है, बल्कि यह आधुनिक सामाजिक संरचना की एक जटिल उपज है। तेजी से बदलते सामाजिक मूल्य, संबंधों की अनिश्चितता और जीवन की बढ़ती प्रतिस्पर्धा ने व्यक्ति को भीतर से अस्थिर बना दिया है। वह बाहरी रूप से सक्रिय और व्यस्त दिखाई देता है, किंतु भीतर से वह एक गहरे खालीपन का अनुभव करता है।

उदाहरण स्वरूप, आधे–अधूरे का महेन्द्रनाथ अपने ही घर में उपेक्षित और असफल महसूस करता है। उसके पास परिवार है, किंतु सम्मान और आत्मविश्वास नहीं।

उनके नाटकों में यह भी देखा जा सकता है कि व्यक्ति अपने अकेलेपन से बाहर निकलने का प्रयास करता है, किंतु उसके प्रयास अक्सर असफल हो जाते हैं। वह संबंधों के माध्यम से अपने भीतर की रिक्तता को भरने का प्रयास करता है, किंतु वे संबंध भी स्थायी संतोष प्रदान नहीं कर पाते। इस प्रकार, उसका अकेलापन और गहरा होता जाता है। यह स्थिति आधुनिक जीवन की एक विडंबना को उजागर करती है, जहाँ व्यक्ति भीड़ के बीच रहते हुए भी अकेला महसूस करता है।

इस संदर्भ में यह प्रश्न भी उठता है कि क्या इस संकट का कोई समाधान संभव है। मोहन राकेश इस प्रश्न का कोई स्पष्ट उत्तर नहीं देते, बल्कि वे इसे एक यथार्थ के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उनके नाटक यह संकेत करते हैं कि आधुनिक जीवन की जटिलताओं को सरल समाधान के माध्यम से नहीं समझा जा सकता। इस प्रकार, वे दर्शक को इस स्थिति पर विचार करने के लिए प्रेरित करते हैं।

इसके साथ ही, यह भी उल्लेखनीय है कि उनके नाटकों में यह अकेलापन केवल नकारात्मक नहीं है। यह व्यक्ति को आत्मचिंतन और आत्म–खोज की ओर भी प्रेरित करता है। इस प्रकार, यह संकट एक अवसर भी बन सकता है, जहाँ व्यक्ति अपने अस्तित्व को नए सिरे से समझने का प्रयास करता है।

पारिवारिक संबंधों का विघटन

मोहन राकेश के नाटकों में पारिवारिक संबंधों का चित्रण एक अत्यंत यथार्थवादी और गहन मनोवैज्ञानिक दृष्टि के साथ किया गया है, जहाँ परिवार केवल स्नेह और सुरक्षा का केंद्र नहीं रह जाता, बल्कि वह तनाव, असंतोष और विघटन का स्थल बन जाता है। आधुनिक जीवन की जँटिलताओं ने जिस प्रकार व्यक्ति को भीतर से प्रभावित किया है, उसी प्रकार उसके पारिवारिक संबंध भी इस प्रभाव से अछूते नहीं रह पाए हैं। परिणामस्वरूप, परिवार के भीतर जो सामंजस्य और एकता कभी इसकी सबसे बड़ी विशेषता हुआ करती थी, वह धीरे–धीरे कमजोर होती हुई दिखाई देती है।

उदाहरण स्वरूप, आधे–अधूरे में परिवार के सदस्य एक ही घर में रहते हुए भी एक–दूसरे से मानसिक रूप से कटे हुए हैं। संवादों में तीखापन, व्यवहार में असंतोष और संबंधों में अस्थिरता यह स्पष्ट करती है कि परिवार की बाह्य संरचना तो बची है, किंतु उसका आंतरिक संतुलन टूट चुका है।

यहाँ पति–पत्नी का संबंध, जो सामान्यतः परिवार की धुरी माना जाता है, स्वयं ही तनाव और असंतुलन का केंद्र बन जाता है। सावित्री और महेन्द्रनाथ के बीच विश्वास, सहयोग और सम्मान का अभाव दिखाई देता है।

उदाहरण स्वरूप, सावित्री अपने जीवन में पूर्णता की खोज में विभिन्न पुरुषों से जुड़ने का प्रयास करती है, किंतु उसे कहीं भी संतुष्टि नहीं मिलती। यह स्थिति आधुनिक जीवन की असंतुष्टि को उजागर करती है।

इस विघटन का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि आधुनिक जीवन में व्यक्ति की अपेक्षाएँ और आकांक्षाएँ अत्यधिक बढ़ गई हैं। जब ये अपेक्षाएँ पूरी नहीं होतीं, तो निराशा और असंतोष का भाव उत्पन्न होता है, जो धीरे–धीरे संबंधों में दूरी का कारण बनता है। मोहन राकेश इस स्थिति को अत्यंत सूक्ष्मता से चित्रित करते हैं, जहाँ पात्र एक–दूसरे को समझने के बजाय एक–दूसरे से शिकायत करते हुए दिखाई देते हैं।

परिवार के भीतर संवाद का टूटना भी इस विघटन का एक प्रमुख संकेत है। पात्र एक–दूसरे से बात तो करते हैं, किंतु उनके बीच वास्तविक संवाद का अभाव होता है। वे अपनी भावनाओं को व्यक्त करने में असमर्थ रहते हैं, जिससे गलतफहमियाँ और दूरी बढ़ती जाती है।

उदाहरण स्वरूप, आधे–अधूरे में बातचीत बहुत होती है, परन्तु कोई भी पात्र दूसरे को सही अर्थ में नहीं समझ पाता। इसी कारण घर का वातावरण तनावपूर्ण बना रहता है।

यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि यह विघटन केवल बाहरी परिस्थितियों का परिणाम नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति के भीतर उत्पन्न असंतोष और अस्थिरता से भी जुड़ा हुआ है। जब व्यक्ति स्वयं अपने जीवन से संतुष्ट नहीं होता, तो वह अपने संबंधों में भी संतुलन बनाए रखने में असमर्थ हो जाता है। इस प्रकार, पारिवारिक विघटन एक व्यापक मानसिक और सामाजिक संकट का प्रतीक बन जाता है।

परिवार के इस विघटन को केवल एक नकारात्मक या पतनशील स्थिति के रूप में देखना पर्याप्त नहीं होगा, क्योंकि मोहन राकेश इसे एक गहरे सामाजिक परिवर्तन के संकेत के रूप में प्रस्तुत करते हैं। पारंपरिक परिवार, जो कभी स्थिरता और सामंजस्य का प्रतीक माना जाता था, आधुनिक जीवन की बदलती परिस्थितियों में अपनी पूर्व संरचना को बनाए रखने में असमर्थ होता जा रहा है।

उदाहरण स्वरूप, बच्चे अपने माता–पिता के तनाव का प्रभाव गहराई से ग्रहण करते हैं। अशोक और बिन्नी के व्यवहार में असुरक्षा, चिड़चिड़ापन और असंतुलन दिखाई देता है। यह दर्शाता है कि परिवार का विघटन अगली पीढ़ी को भी प्रभावित करता है।

फिर भी, इस विघटन के भीतर एक प्रकार की चेतना भी निहित है। यह स्थिति व्यक्ति को यह सोचने के लिए बाध्य करती है कि संबंधों की वास्तविकता क्या है और उन्हें किस प्रकार अधिक सार्थक बनाया जा सकता है। इस प्रकार, यह संकट केवल नकारात्मक नहीं है, बल्कि यह आत्मचिंतन और पुनर्विचार का अवसर भी प्रदान करता है।

यह भी उल्लेखनीय है कि उनके नाटकों में पारिवारिक विघटन किसी एक पात्र या परिस्थिति का परिणाम नहीं है, बल्कि यह पूरे सामाजिक ढाँचे की जटिलता का प्रतिबिंब है। यहाँ दोषारोपण के बजाय एक

व्यापक दृष्टि अपनाई गई है, जो यह संकेत करती है कि आधुनिक जीवन की समस्याएँ बहुआयामी हैं और उनका समाधान भी सरल नहीं हो सकता।

अंततः यह कहा जा सकता है कि मोहन राकेश के नाटकों में पारिवारिक संबंधों का विघटन केवल एक सामाजिक समस्या का चित्रण नहीं, बल्कि आधुनिक जीवन की गहरी विडंबना का उद्घाटन है। यह विघटन व्यक्ति की आंतरिक स्थिति, उसके संबंधों की जँटिलता और समाज के बदलते स्वरूप तीनों को एक साथ उजागर करता है। इसी कारण यह विषय उनके नाटकों में समकालीन बोध का एक महत्वपूर्ण आयाम बन जाता है।

स्त्री–पुरुष संबंध और तनाव

मोहन राकेश के नाटकों में स्त्री–पुरुष संबंधों का चित्रण अत्यंत यथार्थवादी, जटिल और मनोवैज्ञानिक गहराई से किया गया है। ये संबंध पारंपरिक आदर्शों के अनुरूप स्थिर और संतुलित नहीं दिखाई देते, बल्कि उनमें असंतोष, तनाव और विघटन के स्पष्ट संकेत मिलते हैं। इस प्रकार, उनके नाटकों में स्त्री–पुरुष संबंध आधुनिक जीवन की विडंबनाओं और मानसिक संघर्षों का सशक्त माध्यम बन जाते हैं।

उदाहरण स्वरूप, आधे–अधूरे में सावित्री और महेन्द्रनाथ का संबंध इस तनाव का सबसे स्पष्ट उदाहरण है। यहाँ पति–पत्नी का रिश्ता केवल सामाजिक औपचारिकता बनकर रह गया है, जिसमें न तो भावनात्मक निकटता है और न ही पारस्परिक संतोष। सावित्री का अपने पति से असंतुष्ट रहना और बार–बार अन्य पुरुषों में एक **पूर्ण पुरुष** की तलाश करना यह दर्शाता है कि आधुनिक स्त्री अपने संबंधों में एक ऐसी पूर्णता की अपेक्षा करती है, जो वास्तविक जीवन में शायद संभव नहीं है।

दूसरी ओर, महेन्द्रनाथ की निष्क्रियता और असफलता इस तनाव को और अधिक गहरा बना देती है। वह परिवार का मुखिया होने के बावजूद निर्णयहीनता, असफलता और मानसिक कमजोरी से ग्रस्त दिखाई देता है। **उदाहरणस्वरूप, उसकी असफलता से सावित्री में निराशा और शिकायत का भाव बढ़ता है।**

इन संबंधों की एक विशेषता यह है कि इनमें संवाद का अभाव और गलतफहमियों की अधिकता दिखाई देती है। पात्र एक–दूसरे के साथ रहते हुए भी एक–दूसरे को समझ नहीं पाते। उनकी बातचीत अधिकतर आरोप–प्रत्यारोप और कटुता से भरी होती है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि संबंधों की आत्मीयता समाप्त हो चुकी है।

उदाहरण स्वरूप, सावित्री और महेन्द्रनाथ के संवादों में स्नेह से अधिक व्यंग्य, आरोप और कड़वाहट दिखाई देती है। इस प्रकार, संबंध बाहरी रूप से बने रहते हैं, परन्तु भीतर से टूट चुके होते हैं।

यहाँ यह भी महत्वपूर्ण है कि स्त्री और पुरुष दोनों अपने–अपने स्तर पर असंतोष का अनुभव करते हैं, किंतु वे इसे सकारात्मक रूप में व्यक्त करने में असमर्थ रहते हैं। परिणामस्वरूप, यह असंतोष तनाव और संघर्ष का रूप ले लेता है। इस प्रकार, यह संबंध केवल व्यक्तिगत समस्या नहीं रह जाते, बल्कि वे उस व्यापक सामाजिक और मानसिक स्थिति का प्रतिबिंब बन जाते हैं, जिसमें आधुनिक व्यक्ति जी रहा है।

इसके साथ ही, यह भी देखा जा सकता है कि इन संबंधों में अपेक्षाओं का अत्यधिक बोझ भी एक महत्वपूर्ण कारण है। जब व्यक्ति अपने साथी से अपनी सभी इच्छाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति की अपेक्षा करता है, तो निराशा और असंतोष की स्थिति उत्पन्न होती है।

उदाहरण स्वरूप, सावित्री चाहती है कि उसे आर्थिक सुरक्षा, भावनात्मक सहारा और सामाजिक सम्मान सभी एक साथ मिले, किंतु ऐसा नहीं हो पाता। इसी से उसके जीवन में बेचौनी बनी रहती है।

इन संबंधों की परतों को थोड़ा और खोलकर देखें तो स्पष्ट होता है कि यहाँ तनाव केवल दो व्यक्तियों के बीच का नहीं, बल्कि दो मानसिकताओं, दो अपेक्षाओं और दो असंतुलित जीवन–दृष्टियों के बीच का टकराव है। मोहन राकेश के यहाँ स्त्री और पुरुष किसी स्थिर भूमिका में बँधे हुए पात्र नहीं हैं, वे बदलते सामाजिक परिवेश के साथ अपनी–अपनी पहचान खोजने की कोशिश कर रहे हैं, और इसी प्रक्रिया में उनके बीच टकराव पैदा होता है।

सावित्री जैसे पात्र इस परिवर्तनशील स्त्री चेतना का प्रतिनिधित्व करते हैं। वह केवल पारंपरिक पत्नी की भूमिका में सीमित नहीं रहना चाहती, बल्कि अपने जीवन में संतोष, सुरक्षा और आत्मसम्मान की तलाश करती है। किंतु विडंबना यह है कि उसकी यह तलाश उसे स्थिरता नहीं देती, बल्कि और अधिक अस्थिर बना देती है।

दूसरी ओर, पुरुष पात्रों की स्थिति भी उतनी ही जटिल है। वे न तो पारंपरिक भूमिका को पूरी तरह निभा पा रहे हैं, और न ही आधुनिक अपेक्षाओं के अनुरूप स्वयं को ढाल पा रहे हैं। **उदाहरण स्वरूप, महेन्द्रनाथ परिवार का संरक्षक भी नहीं बन पाता और न ही नए समय का सफल पुरुष बन पाता है।**

यहाँ एक और महत्वपूर्ण पहलू उभरकर आता है संबंधों का वस्तुकरण। जब संबंध केवल आवश्यकताओं और अपेक्षाओं की पूर्ति का माध्यम बन जाते हैं, तो उनमें भावनात्मक गहराई और आत्मीयता समाप्त होने लगती है। मोहन राकेश इस स्थिति को बड़े सूक्ष्म ढंग से प्रस्तुत करते हैं, जहाँ पात्र एक–दूसरे के लिए साधन बन जाते हैं, न कि सच्चे अर्थों में साथी।

फिर भी, इन संबंधों को पूरी तरह निराशाजनक नहीं कहा जा सकता। इनके भीतर एक प्रकार की बेचैनी और खोज की प्रवृत्ति भी मौजूद है, जो यह संकेत देती है कि व्यक्ति अपने संबंधों को बेहतर बनाने की आकांक्षा रखता है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि मोहन राकेश के नाटकों में स्त्री–पुरुष संबंधों का चित्रण आधुनिक जीवन की जटिलता, असंतुलन और खोज की प्रक्रिया को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है। ये संबंध न तो पूरी तरह टूटे हुए हैं और न ही पूर्णतः संतुलित, बल्कि वे एक ऐसे मध्यवर्ती अवस्था में हैं, जहाँ संघर्ष, असंतोष और खोज तीनों एक साथ मौजूद हैं। यही विशेषता उन्हें समकालीन बोध का एक अत्यंत महत्वपूर्ण आयाम बना देती है।

समकालीन बोध का समग्र मूल्यांकन

मोहन राकेश के नाटकों में समकालीन बोध का मूल्यांकन करते समय यह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि उनका नाट्य–साहित्य केवल घटनाओं या कथानक का प्रस्तुतीकरण नहीं है, बल्कि यह आधुनिक जीवन की जटिलताओं का गहन मनोवैज्ञानिक और सामाजिक विश्लेषण है। उन्होंने अपने नाटकों के माध्यम से उस युग की मानसिकता को पकड़ने का प्रयास किया है, जिसमें व्यक्ति अपने ही अस्तित्व, अपने संबंधों और अपने परिवेश के साथ निरंतर संघर्ष करता हुआ दिखाई देता है।

उनकी रचनाओं में समकालीन बोध का स्वर किसी एक विषय तक सीमित नहीं है, बल्कि यह बहुआयामी रूप में सामने आता है। व्यक्ति का अकेलापन, पारिवारिक विघटन, **स्त्री–पुरुष संबंधों में तनाव**, मूल्य–संकट और जीवन की अनिश्चितता–ये सभी तत्व मिलकर एक ऐसे परिदृश्य का निर्माण करते हैं, जो आधुनिक जीवन की वास्तविकता को पूरी तीव्रता के साथ प्रस्तुत करता है। इस प्रकार, उनके नाटक केवल एक समस्या को नहीं, बल्कि पूरे जीवन–तंत्र को समझने का प्रयास करते हैं।

यह भी उल्लेखनीय है कि उनके नाटकों में समकालीन बोध केवल बाहरी यथार्थ तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह व्यक्ति के भीतर की मानसिक स्थिति को भी उतनी ही गहराई से व्यक्त करता है। पात्रों के संवाद, उनके व्यवहार और उनके अंतर्द्वन्द्व इस बात को स्पष्ट करते हैं कि आधुनिक जीवन का संकट केवल सामाजिक नहीं, बल्कि गहरे स्तर पर मनोवैज्ञानिक भी है। इस प्रकार, उनके नाटक बाहरी और आंतरिक–दोनों स्तरों पर समकालीन चेतना को अभिव्यक्त करते हैं।

उदाहरण स्वरूप, आधे–अधूरे में सावित्री, महेन्द्रनाथ, बिन्नी और अशोक के संवाद परिवार के भीतर की टूटन, असंतोष और मानसिक दूरी को सामने लाते हैं। इसी प्रकार आषाढ़ का एक दिन में कालिदास और मल्लिका के संबंधों के माध्यम से व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा और भावनात्मक समर्पित जीवन के बीच तनाव दिखाई देता है। ये उदाहरण सिद्ध करते हैं कि मोहन राकेश बाहरी घटनाओं से अधिक भीतरी संघर्षों को महत्व देते हैं।

उनकी रचनात्मकता की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि वे किसी निश्चित समाधान या निष्कर्ष को प्रस्तुत नहीं करते। वे जीवन की समस्याओं को ज्यों का त्यों सामने रखते हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि आधुनिक जीवन की जटिलताओं का कोई सरल समाधान नहीं है। इस प्रकार, उनका नाट्य–साहित्य दर्शक और पाठक को स्वयं सोचने और निष्कर्ष निकालने के लिए प्रेरित करता है।

इसके साथ ही, यह भी देखा जा सकता है कि उनकी भाषा और शिल्प में भी समकालीनता का स्पष्ट प्रभाव है। संवादों की सादगी, स्वाभाविकता और तीखापन पात्रों की मानसिक स्थिति को अत्यंत प्रभावी ढंग से व्यक्त करते हैं। **उदाहरण स्वरूप, आधे–अधूरे के संवादों में कटुता और तीखा व्यंग्य, जबकि आषाढ़ का एक दिन में भावनात्मक कोमलता और मौन का प्रभाव मिलता है।** इस प्रकार, समकालीन बोध केवल विषय–वस्तु में ही नहीं, बल्कि अभिव्यक्ति के स्तर पर भी उपस्थित रहता है।

मोहन राकेश के नाटकों में व्यक्त समकालीन बोध को जब गहराई से परखा जाता है, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी दृष्टि केवल यथार्थ के चित्रण तक सीमित नहीं है, बल्कि उसमें एक प्रकार की आलोचनात्मक चेतना भी निहित है। वे आधुनिक जीवन की विसंगतियों, संबंधों की जटिलताओं और व्यक्ति के भीतर के खालीपन को केवल दिखाते ही नहीं, बल्कि उसके पीछे छिपे कारणों की ओर भी संकेत करते हैं।

उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि वे समकालीन जीवन को किसी एक पक्ष से नहीं देखते। उनके यहाँ न तो आधुनिकता का पूर्णतः समर्थन है और न ही उसका पूर्णतः विरोध, बल्कि एक संतुलित दृष्टिकोण है, जिसमें आधुनिक जीवन की उपलब्धियों और उसकी सीमाओं दोनों को समान रूप से समझने का प्रयास किया गया है। यही संतुलन उनके नाटकों को अधिक विश्वसनीय और प्रभावशाली बनाता है।

फिर भी, उनके नाटकों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करते समय यह प्रश्न उठता है कि क्या उनमें निराशा और विखंडन का चित्रण अपेक्षाकृत अधिक नहीं हो गया है। कई बार ऐसा प्रतीत होता है कि उनके पात्र समाधान की दिशा में आगे बढ़ने के बजाय अपने ही द्वंद्वों में उलझे रहते हैं। किंतु यही अधूरापन उनके नाटकों की विशेषता भी है, क्योंकि यह आधुनिक जीवन की वास्तविक स्थिति को अधिक प्रामाणिक ढंग से प्रस्तुत करता है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि मोहन राकेश के नाटकों में समकालीन बोध एक गहन, बहुआयामी और आलोचनात्मक दृष्टि के रूप में उभरता है, जो आधुनिक जीवन की जटिलताओं को समझने का एक सशक्त माध्यम प्रदान करता है। यह बोध केवल यथार्थ का प्रतिबिंब नहीं है, बल्कि वह मनुष्य को अपने अस्तित्व, अपने संबंधों और अपने समय के प्रति सजग बनाने की दिशा में प्रेरित करता है। यही उनकी रचनात्मकता की सबसे बड़ी शक्ति और स्थायी प्रासंगिकता का आधार है।

संदर्श ग्रन्थ सूची

1. आधे–अधुरे, – मोहन राकेश, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. अन्धार के तट, – मोहन राकेश, राजकमल प्रकाशन।
3. मोहन राकेश रचनावली, संपादक – रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन।
4. मोहन राकेश और उनका साहित्य, – नामवर सिंह।
5. आधुनिक हिन्दी नाटक, – डॉ. नगेन्द्र।
6. हिन्दी नाटक का इतिहास, – आचार्य रामचंद्र शुक्ल।
7. हिन्दी साहित्य का इतिहास, – हजारी प्रसाद द्विवेदी।
8. आधुनिक साहित्य और यथार्थवाद, – डॉ. नगेन्द्र।
9. नाटक और समाज, – विश्वनाथ त्रिपाठी।
10. हिन्दी नाटकों में यथार्थवाद, – डॉ. नगेन्द्र।

समाजार्थिक विकास एवं पर्यटन में ICT की भूमिका : अयोध्या जनपद के विशेष सन्दर्भ में

डॉ. किशन सोनी*

शोध–सारांश

किसी भी समाज की प्रगति को उस समाज की सामाजिक और आर्थिक आधार पर समझा जा सकता है। सूचना एवं संचार तकनीक (ICT) ने अयोध्या जनपद में शिक्षा और सामाजिक जागरुकता को किस प्रकार से रुपांतरित किया है यह अयोध्या जनपद की प्रगति से ही ज्ञात हो जाता है। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का विकास इक्सवी सदी के लिए केवल संचार का माध्यम ही नहीं ब्लकि यह व्यापार, रोजगार सृजन, उत्पादन वितरण का एक प्रमुख साधन बन गया है।

अयोध्या जनपद वर्तमान साक्ष्य परिदृश्य में न केवल ऐतिहासिक रूप से बल्कि सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। श्री राम जन्म भूमि एवं अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डो के निर्माण ने यहाँ एक वैश्विक पर्यटन अर्थव्यवस्था (Global Tourism Economy) की नींव रुप रखी है।

अयोध्या की अर्थव्यवस्था का बदलता स्वरूप

ऐतिहासिक रूप से, अयोध्या (पूर्व में फैजाबाद) की अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से कृषि और सीमित स्थानीय धार्मिक पर्यटन पर निर्भर थी। यहाँ बड़े उद्योगों का अभाव रहा है। परंतु, वर्ष 2019 के सर्वोच्च न्यायालय के फैसले और उसके बाद शुरू हुए बुनियादी ढांचागत विकास (जैसे– महर्षि वाल्मीकि अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा, अयोध्या धाम रेलवे स्टेशन का पुनर्विकास) ने यहाँ की अर्थव्यवस्था की दिशा ही बदल दी है।

आज अयोध्या एक पर्यटन–आधारित अर्थव्यवस्था में परिवर्तित हो चुका है। प्रतिदिन लाखों की संख्या में आ रहे श्रद्धालुओं की आवश्यकताओं (आवास, भोजन, परिवहन, स्मृति चिन्ह) को पूरा करने के लिए स्थानीय व्यापार तेजी से अग्रसरित हो रहा है। इस अचानक आई माँग को संभालने में यदि कोई एक कारक सबसे बड़ा गेम चेंजर साबित हुआ है, तो वह सूचना एवं संचार तकनीक (ICT) ही है।

पर्यटन उद्योग और आतिथ्य सत्कार में ICT की भूमिका

पर्यटन और ICT आज एक–दूसरे के पर्याय बन चुके हैं। जिसे ई–टूरिज्म कहा जाता है, वह अयोध्या में पूर्ण रूप से धरातल पर उतर चुका है।

डिजिटल मार्केटिंग और गंतव्य की ब्रांडिंग

आज कोई भी पर्यटक अयोध्या आने से पहले इंटरनेट पर वर्चुअल दर्शन करता है।

उत्तर प्रदेश पर्यटन विभाग और स्थानीय प्रशासन की वेबसाइट्स, यूट्यूब व्लॉग्स और इंस्टाग्राम रील्स ने अयोध्या की एक वैश्विक ब्रांड इमेज तैयार की है।

दीपोत्सव जैसे कार्यक्रमों का ड्रोन कैमरों और सोशल मीडिया के माध्यम से लाइव प्रसारण पूरी दुनिया में देखा जाता है, जो अप्रत्यक्ष रूप से विदेशी और घरेलू पर्यटकों को अयोध्या आने के लिए प्रेरित करता है।

ऑनलाइन बुकिंग और एग्रीगेटर ऐप्स

अयोध्या के होटल और धर्मशाला उद्योग में डिजिटल प्लेटफॉर्म्स ने क्रांति ला दी है।

OYO, MakeMyTrip, Agoda और Airbnb जैसे एग्रीगेटर ऐप्स के माध्यम से अब देश के किसी भी कोने (या विदेश) में बैठा व्यक्ति अयोध्या में अपने ठहरने की व्यवस्था पहले से कर सकता है।

प्राथमिक आँकड़ों का विश्लेषणः शोध के अंतर्गत अयोध्या के 40 होटल संचालकों/होमस्टे मालिकों से बातचीत की गई। इनमें से 78% ने स्वीकार किया कि उनके 60% से अधिक ग्राहक अब वॉक–इन नहीं आते, बल्कि ऑनलाइन ऐप्स के माध्यम से एडवांस बुकिंग करके आते हैं। इससे व्यवसाय में अनिश्चितता कम हुई है और आय में वृद्धि हुई है।

* असिस्टेंट प्रोफेसर, आशा भगवान बक्श सिंह पी.जी. कालेज पूरा, बाजार, अयोध्या

होमस्टे और रोजगार का विकेंद्रीकरण

ICT ने रोजगार का विकेंद्रीकरण किया है। अयोध्या प्रशासन की पेइंग गेस्ट योजना पूर्णतः तकनीक पर आधारित है। अब अयोध्या के आम नागरिक अपने घरों के अतिरिक्त कमरों को Airbnb या स्थानीय सरकारी ऐप पर सूचीबद्ध कर रहे हैं। इससे पर्यटन से होने वाली आय केवल बड़े होटल मालिकों तक सीमित न रहकर आम जनता की जेब तक पहुँच रही है।

नेविगेशन और सुगम यात्रा

GPS और GoogleMaps: संकरी गलियों और भीड़–भाड़ वाले क्षेत्रों (जैसे हनुमान गढ़ी, राम की पैड़ी) में नेविगेशन ऐप्स पर्यटकों के लिए सबसे बड़े मार्गदर्शक हैं।

ऑनलाइन परिवहन (Ola, Uber, RedBus) अब पर्यटक रेलवे स्टेशन या एयरपोर्ट से बाहर निकलकर सीधे कैब बुक कर सकते हैं। इसके अलावा, स्थानीय ई–रिक्शा चालकों ने भी QR कोड और स्थानीय नेविगेशन को अपना लिया है, जिससे उनका दैनिक व्यवसाय बढ़ा है।

वित्तीय समावेशन और डिजिटल भुगतान क्रांति

भारतीय अर्थव्यवस्था में ICT का सबसे बड़ा चमत्कार डिजिटल भुगतान है। अयोध्या का व्यापारिक परिदृश्य इस कैशलेस इकॉनमी का एक जीवंत उदाहरण बन गया है।

यूपीआई की सर्वव्यापकता

भारत सरकार द्वारा विकसित UPI (Unified Payments Interface) प्रणाली ने छोटे लेन–देन को इतना सरल बना दिया है कि आज अयोध्या के फुटपाथ पर फूल–प्रसाद बेचने वाला दुकानदार भी Paytm/Phone Peसाउंडबॉक्स का उपयोग कर रहा है।

प्राथमिक आँकड़ों का विश्लेषणः व्यापारियों का दृष्टिकोण

इस शोध के न्यादर्श में 80 उत्तरदाता व्यापारी/दुकानदार वर्ग से थे (जिसमें छोटे रेहड़ी–पटरी वाले से लेकर बड़े शोरूम मालिक तक शामिल हैं)। उनके द्वारा दिए गए उत्तर चौंकाने वाले और अत्यंत सकारात्मक हैं:

उपयोग की दरः 80 में से 72 (लगभग 90%) व्यापारियों ने कहा कि उनके पास डिजिटल भुगतान प्राप्त करने के लिए कम से कम एक QR कोड अवश्य है।

बिक्री में वृद्धिः 65% व्यापारियों ने माना कि डिजिटल भुगतान सुविधा होने के कारण उनकी बिक्री में 15–20% की वृद्धि हुई है, क्योंकि अब ग्राहक छुट्टे पैसे न होने के कारण वापस नहीं लौटता।

नकदी प्रबंधन 82% दुकानदारों ने कहा कि बैंक में पैसा सीधे खाते में जाने से उन्हें शाम को नकदी का हिसाब मिलाने की झंझट से मुक्ति मिली है और नकली नोटों का खतरा शून्य हो गया है।

चोरी से सुरक्षाः डिजिटल लेन–देन ने नकदी चोरी के डर को कम किया है, जो व्यापारियों को मानसिक शांति प्रदान करता है।

ई–कॉमर्स और स्थानीय उत्पाद

ई–कॉमर्स ने भौगोलिक दूरियों को मिटा दिया है। अयोध्या जनपद में इसका प्रभाव दोतरफा है–एक उपभोक्ता के रूप में और दूसरा उत्पादक/विक्रेता के रूप में।

उपभोक्ता के रूप में प्रभाव

अमेजन, फ्लिपकार्ट और मीशो जैसे ई–कॉमर्स प्लेटफॉर्म्स ने अयोध्या के शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों के उपभोक्ताओं की खरीदारी की आदतों को बदल दिया है।

ग्रामीण क्षेत्रों के 200 उत्तरदाताओं में से 48% ने पिछले छह महीनों में कम से कम एक बार ऑनलाइन खरीदारी की है।

इसका अर्थ है कि अब टियर–2 शहर या गाँव का व्यक्ति भी उन्हीं वैश्विक और राष्ट्रीय ब्रांड्स तक पहुँच रखता है, जिन तक दिल्ली या मुंबई का उपभोक्ता रखता है। इससे स्थानीय बाजारों में प्रतिस्पर्धा भी बढ़ी है।

उत्पादक/विक्रेता के रूप में प्रभाव (ODOP योजना)

उत्तर प्रदेश सरकार की **'एक जनपद एक उत्पाद योजना'** के तहत अयोध्या जनपद का मुख्य उत्पाद **गुड़** है।

ICT की मदद से अयोध्या के गुड़ निर्माता और किसान अब फ्लिपकार्ट (समर्थ योजना) और अमेजन के माध्यम से अपना रसायन–मुक्त गुड़ सीधे महानगरों के उपभोक्ताओं को बेच रहे हैं।

इसी प्रकार, अयोध्या के स्थानीय हस्तशिल्पी (जैसे– लकड़ी के खिलौने और राम मंदिर के 3D मॉडल बनाने वाले कारीगर) सोशल मीडिया (Facebook Marketplace, Instagram) के माध्यम से देश भर में ऑर्डर प्राप्त कर रहे हैं। इसने स्थानीय कला को एक नया आर्थिक जीवनदान दिया है।

रोजगार सृजन में ICT का योगदान

यह एक आम भ्रांति है कि तकनीक (विशेषकर कंप्यूटर) रोजगार छीन लेती है। जबकि अयोध्या के संदर्भ में प्राथमिक अध्ययन दर्शाता है कि ICT ने रोजगार के नए स्वरूपों को जन्म दिया है।

गिग इकॉनमी का उदय

अयोध्या शहर में इंटरनेट की पहुँच ने गिग इकॉनमी को जन्म दिया है।

जोमेटो और स्विगी जैसे फूड डिलीवरी ऐप्स, और ओला/उबर जैसे ट्रांसपोर्ट ऐप्स ने सैकड़ों स्थानीय युवाओं को रोजगार प्रदान किया है।

यह रोजगार लचीला है, जहाँ कॉलेज जाने वाले छात्र भी पार्ट–टाइम डिलीवरी बॉय के रूप में काम करके अपनी पढ़ाई का खर्च निकाल रहे हैं।

आईटी–सक्षम सेवाएँ और जन सेवा केंद्र

अयोध्या के विभिन्न ब्लॉकों और ग्राम पंचायतों में खुले जन सेवा केंद्र स्वरोजगार का एक बहुत बड़ा माध्यम बन गए हैं।

ई–मित्र या CSC संचालक आधार कार्ड अपडेट करने, ऑनलाइन फॉर्म भरने, टिकट बुक करने और पैसे निकालने का काम करके हर महीने एक अच्छी आय अर्जित कर रहे हैं। यह ग्रामीण क्षेत्रों में माइक्रो–एंटरप्रेन्योरशिप का सबसे उत्तम उदाहरण है।

कृषि अर्थव्यवस्था और डिजिटल तकनीक

यद्यपि अयोध्या का शहरी क्षेत्र पर्यटन की ओर मुड़ चुका है, लेकिन मिल्कीपुर, बीकापुर और रुदौली जैसे ग्रामीण क्षेत्रों की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार आज भी कृषि है। ICT ने इस क्षेत्र में भी साइलेंट रिवोल्यूशनला दिया हैः

ई–नाम और डिजिटल मंडियाँ

राष्ट्रीय कृषि बाजार के माध्यम से अयोध्या के किसान अब स्थानीय मंडी के व्यापारियों के अलावा अन्य राज्यों के व्यापारियों को भी अपनी उपज के दाम ऑनलाइन देख सकते हैं।

यद्यपि 80 किसान उत्तरदाताओं में से केवल 15% ही ई–नाम का सक्रिय उपयोग कर रहे हैं (जो डिजिटल साक्षरता की कमी को दर्शाता है), लेकिन जो कर रहे हैं उन्होंने बिचौलियों के बिना बेहतर मूल्य प्राप्त करने की पुष्टि की है।

डीबीटी (Direct Benefit Transfer) और वित्तीय सुरक्षा

किसानों के लिए सबसे बड़ा आर्थिक सुरक्षा तंत्र पीएम किसान सम्मान निधि है।

ICT के आधार और बैंक खाते के जुड़ाव (JAM Trinity - Jan Dhan, Aadhaar, Mobile) के कारण अब रू0 2000 की किस्त बिना किसी मध्यस्थ या भ्रष्टाचार के सीधे किसानों के खाते में पहुँच रही है। प्राथमिक डेटा के अनुसार 92% पात्र किसानों ने माना कि इस डिजिटल व्यवस्था ने सरकारी सहायता को पारदर्शी बना दिया है।

निष्कर्ष

शोधार्थी द्वारा अयोध्या जनपद के आर्थिक परिदृश्य पर सूचना एवं संचार तकनीक (ICT) के दूरगामी प्रभावों का विस्तृत विश्लेषण किया। अध्ययन से यह पूर्णतः स्पष्ट होता है कि अयोध्या की धार्मिक अर्थव्यवस्था अब सफलतापूर्वक डिजिटल अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत हो चुकी है।

OYO और Make My Trip जैसे प्लेटफॉर्म्स ने जहाँ एक ओर पर्यटकों को सुलभता प्रदान की है, वहीं स्थानीय नागरिकों के लिए होमस्टे के माध्यम से आय के नए द्वार खोले हैं। UPI की ध्वनि अब अयोध्या की हर गली और चौराहे की पहचान बन गई है, जिसने न केवल फुटपाथ के व्यापारियों का वित्तीय समावेशन किया है बल्कि उन्हें नकदी प्रबंधन की समस्या से भी मुक्त किया है। ई–कॉमर्स और गिग इकॉनमी ने अयोध्या के युवाओं के लिए रोजगार के नए अवसर सृजित किए हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- कैस्टेल्स, मैनुअल (Castells M.) (2001).The Internet Galaxy: Reflections on the Internet, Business and Society- ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- पांडेय, रामशकल (2018). शिक्षा में सूचना एवं संचार तकनीकी (ICT in Education). आगराः अग्रवाल पब्लिकेशन्स ।
- भटनागर, सुभाष (Bhatnagar, S.) (2009). Unlocking E-Government Potential: Concepts, Cases and Practical Insights- नई दिल्लीः सेज पब्लिकेशन्स (Sage Publications)
- शिरकी, क्ले (Shirky, C.) (2008). Here Comes Everybody: The Power of Organizing Without Organizations.पेंगुइन बुक्स।
- अयोध्या नगर निगम. (2023). स्मार्ट सिटी अयोध्याः विजन डॉक्यूमेंट एवं प्रोजेक्ट रिपोर्ट. अयोध्याः स्थानीय प्रशासन प्रकाशन।

मृण्मूर्तिकला – विविध काल में प्रासंगिक

सुनीत कुमार द्विवेदी*

मृण्मूर्तियों (मिट्टी की बनी मूर्ति) का इतिहास भी उतना ही प्राचीन है, जितना स्वयं मानव का इतिहास। मिट्टी द्वारा बने इन पूरावशेषों को प्रदर्शित करने का उद्देश्य जनसामान्य को मनुष्य एवं मिट्टी के आपसी समन्वय एवं मानव द्वारा मिट्टी के विविध प्रकार के उपयोग की जानकारी प्रदान करना है। वस्तुतः भारत में मिट्टी से निर्मित कलाकृतियां व वस्तुओं के माध्यम से प्राचीन काल में प्रचलित सामाजिक एवं धार्मिक मान्यताओं तथा लोक कला की जानकारी प्राप्त होती है।

जैसे-जैसे मानव का बौद्धिक विकास हुआ वैसे-वैसे ही उसकी कला के प्रयोग की प्रतिभा भी विकसित हुई। उसने अपने मनोभावों को व्यक्त करने के लिए सर्वप्रथम मिट्टी का उपयोग किया, क्योंकि यह सहज व सुलभ होने के साथ-साथ मूर्ति आदि के निर्माण में अपेक्षाकृत सरल थी। संभवतः यही कारण रहा होगा कि विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में प्रत्येक काल में मिट्टी की बनी मूर्तियों का निर्माण होता रहा है ।

वस्तुतः मृण्मूर्तियों के प्रयोग का प्राचीनतम उदाहरण बलूचिस्तान (पाकिस्तान) स्थित मेहरगढ़ से प्राप्त हुआ है, जिसका समय लगभग सात हजार वर्ष पुराना है । कालांतर में यह परंपरा हमें हड़प्पा सभ्यता के समय से प्राप्त होने लगती है। इस सभ्यता की विभिन्न पूरास्थलों से हजारों की संख्या में मृण्मूर्तियों प्राप्त हुई हैं इसमें मात्र देवी की मृणमूर्तियां उल्लेखनीय है। भारत में हड़प्पा सभ्यता के प्रमुख स्थलों यथा धौलावीरा (गुजरात), कालीबंगा (राजस्थान), बनावली (हरियाणा) के अतिरिक्त महाराष्ट्र के नेवासा , इनामगांव आदि पुरस्थलों से भी लगभग चार हजार वर्ष पुरानी मात्र देवियों की मृण्मूर्तियों प्राप्त हुई हैं। कालांतर में गंगा घाटी के पूरा स्थलों जैसे - राजघाट (वाराणसी), कौशांबी एवं अहिछत्र (बरेली) तथा बक्सर, पाटलिपुत्र (बिहार) आदि स्थलों से प्राप्त मृण्मूर्तियों से तत्कालीन कल के विकसित स्वरूप का प्रमाण प्रस्तुत करती है

प्रारंभिक मृण्मूर्ति कला/ हड़प्पा काल

भारत में सबसे प्राचीन मृण्मूर्तियां हड़प्पा सभ्यता के पूरास्थलों से प्राप्त हुई है जिन्हें हाथ से डोलिया कर बनाया गया है,अर्थात इनके निर्माण में सांचों का प्रयोग नहीं किया गया। यह मृण्मूर्तियां मुख्यतः स्त्री प्रतिमाओं एवं पशु- पक्षियों के रूप में प्राप्त हुई है । स्त्री प्रतिमाएं मातृदेवी की है जिनकी पूजा प्राचीन समय में भूमध्य सागर से गंगा घाटी तक लोकप्रिय थी। इन स्त्री मृण्मूर्तियों को प्रायः गले में हार, कमर में चौड़ी मेखला, सिर पर भारी केस विन्यास और कानों में आभूषण पहने बनाया गया है।

मात्रदेवी की मृण्मूर्तियों के निर्माण की यह परंपरा हड़प्पा संस्कृति के बाद भी प्रचलन में रही। कालांतर में उत्तर भारत के विभिन्न ऐतिहासिक पुरस्थलों से मौर्य शुंग काल में मात्र देवी की जो मृण्मूर्तियां प्राप्त हुई है वे भी पूर्व परंपरा अनुसार ही निर्मित की गई है। कला की दृष्टि से यह प्राचीन मृण्मूर्तियां अत्यधिक सुंदर नहीं है किंतु चित्रण की दृष्टि से प्रभावशाली हैं और उनके मुख एवं शरीर से भाव प्रकट होते हैं

मौर्यकालीन मृण्मूर्तिकला

मृण्मूर्तियों को भारत में प्रथम बार मौर्य काल में कलात्मक वस्तुओं के रूप में निर्मित किया गया है। यह विकास मुख्यतः मगध तक ही सीमित था जो मौर्य साम्राज्य की आर्थिक व राजनीतिक गतिविधियों का सबसे महत्वपूर्ण केंद्र था । इस काल में चीकोटी विधि द्वारा हाथ से मृण्मूर्तियों का निर्माण किया गया बाद में केवल चेहरे के लिए सांचे का प्रयोग किया गया। मौर्यकालीन मृणमूर्ति कला में विदेशी प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है संभवतः यह मगध की राजधानी पाटलिपुत्र (पटना) पर विदेशियों के व्यापारिक एवं राजनीतिक आवागमन का परिणाम था।

---

* शोधार्थी, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, सल्तनत बहादुर पी.जी. कॉलेज, बदलापुर, जौनपुर, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर

मगध में वस्तुतः यह कला राजशैली से प्रभावित हो गई थी जबकि मगध के बाहरी क्षेत्रों जैसे मथुरा,कौशांबी आदि की कला लोग परंपरा से प्रभावित थी। मौर्य युगीन मृण्मूर्ति कला के प्रमुख केंद्र मथुरा, अहिक्षेत्र (बरेली) कौशांबी, भीटा (प्रयागराज), राजघाट (वाराणसी), बुलंदीबाग व कुमारहार (पटना) थे। मथुरा की मृण्मूर्तियां काली -भूरी मिट्टी से निर्मित है जबकि कुम्हार व बुलंदीबाग की मृण्मूर्तियां बादामी रंग की है ।

शुंगकालीन मृण्मूर्तिकला

शुंगकाल की मृण्मूर्तियों में कलात्मक परिवर्तन दिखाई देता है जो तत्कालीन समाज में मृण्मूर्ति कला की लोकप्रियता को दर्शाता है । इस काल में हस्त निर्मित मृण्मूर्तियों का स्थान पूर्णता सांचे से बनाई गई मृण्मूर्तियां ने ले लिया। मूर्तियों पर अलग से शरीर के अंगों अथवा आभूषणों को पूर्व की भांति जोड़ा या चिपकाया नहीं गया है। शरीर के अंगों को ढकने के लिए महीन वस्त्रों व अलंकरण का सहारा लिया गया है, यह मृण्मूर्तियां दो प्रकार से बनाई गई है

प्रथम प्रकार में अग्रभाग में सांचे का प्रयोग किया गया जबकि पृष्ठ भाग खुरदुरा है। द्वितीय प्रकार में अग्र एवं पृष्ठ दोनों भाग सांचे के प्रयोग से बनाए गए हैं। मथुरा, कौशांबी व अन्य स्थानों से अनेक सांचे प्राप्त हुए हैं। प्रथम बार सुगकाल में गज लक्ष्मी की प्रतिमा का सृजन हुआ इसके अतिरिक्त मात्रदेवी, वसुधारा, मिथुन आकृतियां विभिन्न मुद्राओं में स्त्री आकृतियां, पशु पक्षी व खिलौना गाड़ियों की मृण्मूर्तियां मुख्यतः इस काल में निर्मित हुई।

कुषाण कालीन मृणमूर्तिकला

कुषाण काल में मृण्मूर्तियों की संख्या में वृद्धि के साथ-साथ विविधता भी दिखाई देती है। इस काल में मृण्मूर्तियों का निर्माण दो प्रकार से किया गया, प्रथम प्रकार में शुंग काल की भांति सांचे का प्रयोग कर मृण्मूर्तियां बनाई गई जिसकी संख्या अत्यल्प है, द्वितीय प्रकार में हाथ से ढालकर बनाई गई मृण्मूर्तियां हैं जो सर्वाधिक संख्या में प्राप्त होती है अतः उनमें वह सौंदर्य नहीं है जो शुंग काल की मृण्मूर्तियों में दिखाई देता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि कुषाण काल में प्रस्तर शिल्प को राजाश्रय मिलने के कारण मृणमूर्ति कला उपेक्षित रही। इस काल में हल्के लाल रंग की मृण्मूर्तियां प्राप्त होती है जिन पर गहरे लाल रंग की परत (स्लिप)मिलती है। कुषाण कालीन मृण्मूर्तियां मथुरा, हुलासखेड़ा (लखनऊ) एरच (झांसी)कौशांबी आदि पुरस्थलों से प्राप्त हुई है।

गुप्तकालीन मृणमूर्ति कला

इस युग में मृण्मूर्ति निर्माण कला अपने चरमोत्कर्ष पर थी। गुप्त काल में दो विशिष्ट प्रकार की मृणमूर्ति निर्माण शैलियां दृष्ट्या होती है। प्रथम शैली में सांचे से बनी लघु आकृतियों और छोटे अलंकृत मिट्टी के पट्ट (ब्लॉक) है, जिनका प्रयोग सामान्य जन द्वारा दैनिक घरेलू साज- साज एवं धार्मिक कार्य हेतु किया जाता था। द्वितीय शैली में बड़ी आकृतियों और अलंकृत मिट्टी के पट्ट हैं, जिनका प्रयोग मंदिरों व मठों की साज सज्जा में किया गया है। गुप्त युग की कला विशुद्ध भारतीय है। इस युग की मूर्तियों के मुख पर आध्यात्मिक और आंतरिक शांति का भाव प्रदर्शित होता है। बौद्ध, जैन और पौराणिक देवी- देवताओं की मृण्मूर्तियों अत्यधिक संख्या में अत्यंत सौंदर्य एवं कलात्मकता से पूर्ण बनाई गई। रामायण, महाभारत एवं कृष्ण लीला के दृश्यों का अंकन मंदिरों के निर्माण में प्रयुक्त ईंटों पर अत्यंत आकर्षक रूप में किया गया है। उक्त समस्त मृण्मूर्तियां सुंदर, स्वाभाविक, आकर्षक, यथार्थ तथा कलात्मक है। नारी मूर्तियां इस काल में मुख्य रूप से प्रभावशाली हैं जो नारी अस्मिता की अवधारणा को स्पष्ट करता है ।

गुप्त काल के अवसान के बाद मृणमूर्ति कला भारत के पूर्वी क्षेत्र विशेषकर बंगाल व बिहार तक सीमित रह गई। यद्यपि कश्मीर में भी कुछ समय तक इसके निर्माण के प्रमाण प्राप्त होते हैं। पूर्वी भारत में पाल शासको के समय (765 से 1175 ई०) मृणमूर्ति कला का बृहद प्रयोग प्राप्त होता है।विशेष रूप से स्थापत्य कला में ईंटों के प्रयोग के रूप में मंदिरों, मठों आदि की दीवारों पर मूर्तियों से अलंकृत ईंटों का प्रयोग किया गया जिन पर पौराणिक आख्यान प्रमुखता से अंकित किए गए। बहुत मनौती पट्टी गांव का भी अत्यधिक संख्या में निर्माण इस काल में प्राप्त होता है।

उपरोक्त सभी काल की मृण्मूर्तियां अपने निहित आंतरिक गुणों के कारण विभिन्न काल में विविध रूपों एवं कलाओं के द्वारा मानव जीवन में उपयोगी रही है जो प्रत्येक सांस्कृतिक काल की अपनी विशिष्ट शैलीगत विशेषताओं के द्वारा जानी जाती थी।

संदर्भ सूची –

- काला. एस-सी-भारतीय मृत्तिका रला
- गित, आर एस- - भारतीप मूर्तिकला, 1975
- रे, नीहार रंजन - मौर्य एण्ड पोस्ट मोपेन आर्ट, दिल्ली 1975.
- गुप्ता, पी.एल. - गंगा घाटी टेराकोटा कला, पृथ्वी प्रवासन, वाराणसी
- मिश्र, रमानाथ - भारतीय मूर्तिकला का इतिहास
- मिश्र, इंदुमती - प्रतिमा विज्ञान
- पान्डेप, वी. के. प्राचीन भारतीय प्रतिमा एवं मूर्ति विज्ञान
- दुबे, आ ए०के० मध्य गंगा घाटी में अधिवास प्रादेपा
- मिश्र, विभा- कौशाम्बी की मिट्टी की मूर्तियाँ